तेवरीपक्ष

तेवरी–विधा को समर्पित प्रस्तुति

वर्ष–26, अंक-1, जन.–मार्च–2009, मूल्य–15 रु., वार्षिक–50 रु.

20

तेवरी
(राजकुमार मिश्र)

एक सुहाना हर सू मंजर पहले था पर आज नहीं।
खून और पानी में अंतर पहले था पर आज नहीं।
रक्तपात की ग्लानि कहाँ जो आज हिमालय ले जाए,
सच की खातिर मिटा युधिष्ठर पहले था पर आज नहीं।
कहता बाल्मिकी अपने को, किन्तु लूट से दूर नहीं,
एक लुटेरा आखिर रहबर पहले था पर आज नहीं।
हर परिवारीजन के मुख पर आज घृणा के बोल मिले,
सद्भावों का किस्सा घर–घर पहले था पर आज नहीं।
नैतिकता पर उपहासों की, तिरस्कार की चोटें अब,
आदर्शों के प्रति अति आदर पहले था पर आज नहीं।
हर जुबान गाती थी जिसको और धन्य हो जाती थी,
कबिरा का वो ढाई आखर पहले था पर आज नहीं।
'राजकुमार' आज का शिव तो केवल ज़हर उगलता है,
विष को पीने वाला शंकर पहले था पर आज नहीं।

संस्थापक–**लोककवि रामचरन गुप्त**

परामर्श–डॉ. गोपालबाबू शर्मा,
दर्शन बेज़ार, राजकुमार मिश्र

संपादक–रमेशराज

Scanned by CamScanner

दर्शन बेजार की तेवरियाँ

तुम बनाकर चल दिये आंगन में मेरे क्यारियाँ,
मेरे मन के पेड़ पर तुमने चला दीं आरियाँ।
एक बँटवारे के ग़म से हम उबर पाये न थे,
दूसरे बँटवारे की करने लगे तैयारियाँ।
फूँस के छप्पर की छत है सिर छुपाने के लिए,
देखना है फैंकते हैं आप कब चिंगारियाँ।
अब तो शायद सिसकियों में ही दबी रह जायेंगी,
गूँजती हैं आज मेरे घर में जो किलकारियाँ।
एक दिन ये आग बनकर ही जला देंगी तुम्हें,
जब भी ज़िद पर आयेंगी 'बेज़ार' की बेज़ारियाँ।

तू अपनी खुद की हिफाज़त में लग जा,
जमाने से खुलकर बग़ावत में लग जा।
क़सम है तुझे आज बहते लहू की,
हर एक जुल्म की तू खिलाफत में लग जा।
कोई साथ तेरे न आये कि आये
जमाने की बेहतर इनायत में लग जा।
तू अपनी ही धुन में चला-चल अकेला
उसूलों की अपने हिफाजत में लग जा।
सितमगर के हाथों से ले खींच खंजर,
नयी क्रांति के तू स्वागत में लग जा।
न कोई महल झोंपड़ी को उजाड़े
तू 'बेजार' इसकी हिफाजत में लग जा।

विजयकुमार 'तन्हा'

शब्द को तलवार कर
वक्त पड़े तो वार कर।
खुदकुशी करता है क्यों,
ज़िंदगी से प्यार कर।
हर खुशी मिल जाएगी,
थोड़ा इंतजार कर।
मौत मंजिल हर बशर,
तू इसे स्वीकार कर।

-सं.-प्रेरणा, पुवायां, शाहजहांपुर-२४२४०१

केशव शरण

फूलों की खूशबू भी ले,
मौका पाकर छू भी ले।
सत्ता-सुख डाकू भी ले,
और इसे साधू भी ले।
कौन नहीं है जो लेता,
जनता का धन तू भी ले।
नीर नदी का सोख लिया,
अब इसका बालू भी ले।
लेने वाले मेरी हँसी,
अब मेरे आँसू भी ले।
बोझ बढ़ाता जा मेरा,
और मेरे बाजू भी ले।
सब सुक्खू के हिस्से क्यों ,
कुछ तो सुख दुक्खू भी ले।

-एस २/६४, सिकरौल, वाराणसी-२

यह पत्र आपके लिये है....

चूंकि आप एक सामर्थ्यवान रचनाकर्मी और जिम्मेदार व्यक्ति हैं-यह पत्र आपके लिए है। वैसे तो यह कई बार हुआ है कि मेरी ग़ज़लें चोरी से लोगों ने छपवा लीं और पकड़े जाने पर जब बात कोर्ट-कचहरी तक पहुंची तो चोर साहब गिड़गिड़ाए और लिखित माफी मांगी तथा कई तथाकथित बड़े और प्रभावशाली लोगों से मुझे कहलवाया गया कि मैं मामले को रफा-दफा कर दूं। खैर वो सब हुआ। फिलहाल आपके समक्ष स्थापित ग़ज़लगो जनाब शिव ओम अम्बर साहेब की ग़ज़ल है जो 'प्रैस मेन'' में २ अगस्त २००८ को प्रकाशित हुई है, ग़ज़ल की कॉपी (सं.-तेवरीपक्ष को) संलग्न है। अब मेरी ग़ज़ल जो मेरे ग़ज़ल संकलन 'जैसे कोई लौटेगा' के मिसरे पर गौर फरमायें-'लफ्जों में चिंगारी रख' और मेरी ग़ज़ल के चौथे शेर के मसरा-ए-सानी को देखें- 'हुबहू लफ्ज-व-लफ्ज नकल!! अब जनाब के दूसरे शेर पर गौर करें-'जीने की ख्वाहिश.....तैयारी रख'। अब मेरी ग़ज़ल के तीसरे शेर को देखें तो साफ मालूम हो जायेगा कि चोरी किया गया है। इनके पहले शेर में 'गुलबारी' की जगह 'खुद्दारी' रख दिया गया है। और मिसरों की तरतीब उलट दी है-बस अब एक और उदाहरण इसी ग़ज़ल में मेरा मतलअ है-'या तो हमसे यारी रख, या फिर दुनियादारी रख'। एक और साहब फरमाते हैं-'श्याम निभानी है गर यारी, तो फिर दुनियादारी मत कर'। मैटर आप तक यह पहुंचाना था सो मैंने किया। आपसे अपेक्षा तो रहेगी ही कि आप इन बेहतरीन ग़ज़ल कारों और सज्जन लोगों के खिलाफ मेरे साथ खड़ें होंगे। **-विज्ञान व्रत** -एन १३८ सैक्टर २५, नोएडा-२०१३०१

Scanned by CamScanner

हिन्दी ग़ज़ल :

कितनी हिन्दी, कितनी ग़ज़ल?

समकालीन हिन्दी साहित्य के प्रमुख समीक्षक/आलोचक डॉ० वेदप्रकाश अमिताभ कहते हैं-''हिन्दीग़ज़ल की अपनी पहचान बन चुकी है। दुष्यंत, नीरज, चंद्रसेन विराट, कुँअर बेचैन, अदम गोंडवी आदि ने हिन्दीग़ज़ल को उल्लेखनीय बनाया।''

'निर्झर' हिन्दी ग़ज़ल विशेषांक-९१-९२, पृष्ठ ९२ पर 'हिन्दीग़ज़ल' के बारे में डॉ० अमिताभ का उक्त कथन कितना सजीव है, इसका अनुमान इस वास्तविकता के साथ सहजतापूर्वक लगाया जा सकता है कि हिन्दीग़ज़ल के पक्ष में उन्होंने जो-जो नाम गिनाये हैं, उनमें से अधिकांश हिन्दीग़जल के न होकर 'गीतिका', 'मुक्तिका,' 'अवामी ग़ज़ल' या सिर्फ ग़ज़ल के झंडेबरदार हैं।

डॉ० अमिताभ के संपादन में जनधर्मी चिन्तन और सृजन का अनियतकालीन आयोजन 'प्रसंगवश' का 'समकालीन हिन्दीग़ज़ल' पर केंद्रित विशेष अंक फरवरी-९४ ग़ज़ल-विधा के पारखी कवि श्री मधुर नज़्मी के अतिथि सम्पादन में स्वागतेय है।

मज़ेदार बात यह है इस अंक के अतिथि सम्पादक मधुर नज़्मी, इसी हिन्दीग़ज़ल विशेषांक में कथित हिन्दीग़ज़ल के विरुद्ध यह घोषणा करते नजर आते हैं कि-''आज हिन्दीग़ज़ल के बुनियादी सवालों को उत्तरित करने की आवश्यकता है। त्रिलोचन शास्त्री की संदर्भित बात-'उत्तर देकर कोई ओखली में सिर क्यों दे?', लगभग सभी ग़ज़लकारों की बात है। कोई खुलकर अपनी बात नहीं कह पा रहा है। 'समकालीन ग़ज़ल' कहकर या अन्य नाम देकर विषय से पलायन की स्थिति है। हिन्दी ग़ज़ल, उर्दू ग़ज़ल आदि के लिये वाइफरकेटिंग पौइन्ट की आवश्यकता है। चिमटे से अंगारा छूने की यह प्रक्रिया सांघातिक है। **हिन्दीग़ज़ल में हिन्दीपन कितना?** यह सवाल भी हिंदी ग़ज़लकारों के लिये एक चुनौती है। परम्परा को काटने के लिये परम्परा की सविवेक जानकारी आवश्यक है। आज की उर्दू-ग़ज़ल और हिंदीग़ज़ल में फर्क भाषा की लिपि का तो हो सकता है, देखने-पढ़ने में कहीं से नहीं। **ग़ज़ल को सिर्फ ग़ज़ल रहने दिया जाये, इसी में ग़ज़ल का हित है।''**

अपने लेख 'समकालीन हिन्दी ग़ज़ल : कुछ उत्तर' में श्री मधुर नज़्मी ने (उक्त प्रसंगवश के हिन्दी ग़ज़ल विशेषांक के माध्यम से) हिन्दी ग़ज़ल के बारे में कोई समाधान प्रस्तुत करने के बजाय उल्टे कुछ नुकीले और तीखे प्रश्नों की नोकें कथित हिन्दी ग़ज़लकारों की ओर कर दी हैं, जिनकी चुभन से सिर्फ ऐसे बयान देकर मुक्ति नहीं पायी जा सकती कि -**'चाहे उर्दू-फारसी के जानकर हिन्दीग़ज़ल वालों पर हँसें, बहरों के टूटने की शिकायत करें, पर यह निश्चित है कि ग़ज़ल लोकप्रिय हो चली है और अपना स्वतंत्र अस्तित्व निर्मित करने में सफल रही है। अधिकतर रचनाकारों ने मतला, मक्ता, फारसी-शब्दावली से मुक्ति पा ली है। उसकी वैचारिक दिशा भी निश्चित हो गई है।'** (डॉ० वेदप्रकाश 'अमिताभ', 'प्रसंगवश', फर०-९४, पृ.३)

डॉ० अमिताभ के कथन के आधार पर अगर हम हिन्दीग़ज़ल में ग़ज़लपन को तय करें तो हिन्दीग़ज़ल में परम्परा की सविवेक जानकारी का अभाव तो सर्वत्र दृष्टिगोचर होता ही है, साथ ही परम्परा को काटने के नाम पर ग़ज़ल की आवश्यक और प्राणवान् तकनीकी जैसे बहर, मतला ,मक्ता आदि से मुक्ति पाने का औचित्यहीन प्रयास भी लगातार जारी है। परिणाम हम सबके सामने है-अरबी और फारसी के जानकार हिन्दी वालों की इस ग़ज़ल की सृजनात्मकता को लेकर जमकर हँसी या

Scanned by CamScanner

खिल्ली उड़ाते हैं। सवाल यह है कि हिन्दी वाले अपनी ऐसी दुर्गति या दयनीय अवस्था बनाने या बनवाने पर क्यों तुले हैं? अच्छा यही होगा कि वे या तो हिन्दी में कथित ग़ज़लें लिखना छोड़ दें या ग़ज़ल की आवश्यक शर्तों का पूर्ण निर्वाह करें।

अब जबकि 'हिन्दीग़ज़ल.......हिन्दीग़ज़ल' का हो-हल्ला हिन्दी साहित्य में पूरे उन्माद के साथ सर्वत्र विराजमान है, ऐसे में हिन्दीग़ज़ल के पक्षधरों या रचनाकारों से ये प्रश्न बड़े सलीके और संजीदगी के साथ पूछे जाने चाहिए कि **आखिर यह हिन्दीग़ज़ल है क्या?** क्या हिन्दी (देवनागरी लिपि) में लिखी जाने वाली ग़ज़लों का नाम हिन्दीग़ज़ल है? इन सब सवालों से पहले पूछा जाने वाला सबसे अहं सवाल है कि-**हिन्दी ग़ज़ल में कितनी हिन्दी? कितनी ग़ज़ल?**

''गजल शब्द मूलतः अरबी भाषा का है। जिसका अर्थ है-'औरत से बातचीत करना'। ग़ज़ल का संबंध अरब की 'याना' नामक काव्य-विधा से रहा है। ......जिस रचना में मतला, रदीफ, काफिया और मक्ता का सफल निर्वाह हो, उस रचना को ही ग़ज़ल कहा जाता है। ....पर असल में एक बात और है कि अरबी में 'कसीदा' नाम की एक विधा है। 'कसीदा' के प्रारम्भ की चार-छः पंक्तियों को 'तश्बीब' कहा गया है। 'तश्बीब' को 'प्रणय-गीत' भी कहते हैं। कुछ समय बाद अरबों का 'कसीदा' युद्धों के दौरान ईरान पहुँचा । ईरानी कवियों को 'कसीदे' की 'तश्बीब' बहुत पसंद आयी । इन कवियों ने 'तश्बीब' को 'कसीदे' से अलग कर लिया। ग़ज़ल इसी तश्बीब की देन रही। ....दरअस्ल ग़ज़ल का एक मिजाज रहा है। उसका बुनियादी मिजाज तो आशिकाना है। ग़ज़ल शेरों से बनती है। ग़ज़ल में सात, नौ, ग्यारह के क्रम से शेर पाये जाते हैं। वास्तव में ग़ज़ल का हर शेर स्वतंत्र है और एक-एक शेर एक-एक कविता होता है। **ग़ज़ल के लिए बहरों का बंधन अनिवार्य है।** भूलकर भी ग़ज़ल बे-बहर नहीं होनी चाहिए।''-डॉ० सरदार मुजावर,'दीपशिखा' (समकालीन हिन्दी ग़ज़लों का वसीयतनामा) वर्ष-एक, अंक-पृष्ठ १४,१५

'दीपशिखा' के उक्त अंक में डॉ० सरदार मुजावर के लेख 'हिन्दीग़ज़ल:समयगत सच्चाइयों का अनूठा दस्तावेज' के अनुसार अगर हम ग़ज़ल के ग़ज़लपन को तय करें तो इस बात का स्पष्ट प्रमाण मिल जाता है कि ग़ज़ल अन्ततः एक कथ्य विशेष का नाम है जो कि 'कसीदों' से निकाले गये टुकडों (तश्बीब) को जोड़कर अपने प्रारम्भिक दौर में तैयार की गई और यही कारण है कि तश्बीबों को जोड़ने पर एक शेर का कथ्य, दूसरे शेर के कथ्य से भिन्नता खुद-ब-खुद ले बैठा, जो आगे चलकर ग़ज़ल की एक विशेषता बन गया। ठीक इसी प्रकार रदीफ़, काफिये, मतला, मक्ता, बहरों के बंधनादि भी ग़ज़ल के तकनीकी पक्ष के आधार बाद में चलकर बने। कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि एक कथ्य विशेष 'प्रेमिका से प्रेमपूर्ण बातचीत', जिसे हम आत्मरूप भी कह सकते है, का एक विशिष्ट शरीर (मतला, मक्ता, बहरें, रदीफ, काफिए) में कई अन्य खूबियों के साथ जब प्रतिष्ठित किया गया तो इसको 'ग़ज़ल' नाम दिया गया।

ग़ज़ल जब तक अरबी में रही, इतना तो निश्चित हैं उसके कर्ता, क्रिया, कर्म, कालबोधक सहायक क्रियाएँ, अर्थात् उसका समस्त व्याकरण अरबी का रहा, लेकिन जब उसका सृजन भारत के कवियों-शायरों द्वारा भारत में किया गया तो उसका समस्त व्याकरण का रूप हिन्दी से लिया गया। आज लिपि या सम्प्रदाय का अन्तर रखकर हिन्दी और उर्दू के सियासतदां भले ही ग़ज़ल को हिन्दी या उर्दू में बाँटने का प्रयास करें, लेकिन यह एक वैज्ञानिक और निर्विवाद वास्तविकता है कि **उर्दू कोई अलग भाषा नहीं। वह हर तरह हिन्दी की बोली या हिन्दी ही है।** जिस कथित भाषा के पास काल बोधक शब्द या सहायक क्रियाएँ (है, था आदि), मुख्य क्रियाएँ (खाना,पीना, हँसना, बोलना आदि), सर्वनाम (वे, तू, तुम, मैं, वह, आप आदि) सब कुछ हिन्दी का हो, वह अलग से भाषा कैसे बन सकती है? उर्दू तो हर प्रकार से हिन्दी ही है। **चार-छः**

Scanned by CamScanner

अरबी-फारसी की संज्ञाएँ या संज्ञाविशेषण डाल देने से उर्दू किसी भी तरह भाषा नहीं बन जाती। अतः ग़ज़ल को उर्दू और हिन्दी में बाँटकर देखने की प्रवृत्ति साहित्य के लिए घातक तो है ही, एक नई तरह की साम्प्रदायिकता को भी जन्म देती है।

बात सिर्फ इतनी-सी है और यही बात सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण है कि ग़ज़ल को सिर्फ ग़ज़ल रहने दिया जाये और **''ग़ज़ल लिखने का मतलब ही है कि ग़ज़ल के प्रेरणा-स्त्रोत तक पहुँचा जाये।''**(त्रिलोचन शास्त्री प्रसंगवश १९-२० फरवरी ९४ पृ० ९४)

अतः इस तरह के निर्जीव तर्कों से कोई बात नहीं बनने वाली कि-''चाहे उर्दू-फारसी के जानकार हिन्दीग़ज़ल लिखने वालों पर हँसे, बहरों के टूटने की शिकायत करें, यह निश्चित है कि हिन्दी में ग़ज़ल लोकप्रिय हो चली है और अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाने में सफल हुई है। अधिकतर रचनाकारों ने मतला, मक्ता, फारसी-शब्दावली, पद-विन्यास, विदेशी प्रतीकों से अपना पिन्ड छुड़ा लिया है। उसकी वैचारिक दिशा भी तय हो चुकी है।''

इस तरह के बयान देकर, ग़ज़ल की आवश्यक शर्तों से पिण्ड छुड़ाकर अर्थात् ग़ज़ल का हर तरह से क़त्ल कर हिन्दी में कथित ग़ज़ल कही या मानी जाये या उसे ज़िन्दा रखने का प्रयास रखा जाये, यह बात गले नहीं उतरती। अगर यह कथित ग़ज़ल हिन्दी में आकर मतला, मक्ता, बहर, पद-विन्यास, फारसी-शब्दावली, विदेशी प्रतीकों के साथ-साथ अपने प्राण-रूप (प्रेमिका से प्रेमपूर्ण बातचीत) से भी मुक्ति पाले और फिर भी ग़ज़ल नाम की सार्थकता को बरकरार रखे, इससे ज़्यादा भद्दा मजाक और क्या हो सकता है। जैसा कि श्री शिव ओम अंबर फरमाते हैं कि-''ग़ज़ल अब किसी शोख हथेली पर अंकित मेंहदी की दन्त-कथा से हटकर युवा आक्रोश की मुट्ठी में थमी हुई प्रलयंकारी मशाल है। वह रनवासों की स्त्रियों से प्राप्त की गयी किसी रसिक की रसवार्ता नहीं, बल्कि भाषा के भोजपत्र पर विप्लव की अग्निऋचा है।''('निर्झर' हिन्दीग़ज़ल विशेषांक-९१-९२, पृ० ८०)

गीत की आत्मा उसकी 'गेयता' है, यदि उसे ही खत्म कर दिया जाये तो कैसा गीत? लघुकथा की आत्मा 'व्यंग्य' है, उसे हटा दें तो लघुकथा और लघुकहानी में कैसा और कितना फर्क? वर्णिक छन्द की आत्मा उसकी निश्चित 'गण' व्यवस्था है, उसे ही नष्ट कर दिया जाये तो कैसा वर्णिक छन्द? दोहे का दोहापन उसके 'मात्रिक विन्यास'-१३ और ११ मात्राओं के क्रम से जाना जाता है। यदि इस मात्रिक विन्यास में थोड़ी-सा भी रद्दोबदल कर दिया जाये तो दोहे का सारा का सारा दोहापन ख़त्म। यदि इस मात्रिक विन्यास को उलट दिया जाये, यह दोहे की जगह सोरठा बन जाता है। श्री शिव ओम अम्बर के उल्लेखित कथन के कुतर्क तो यहीं उजागर हो जाते हैं कि वैसे तो वे आज ग़ज़ल को 'विप्लव की अग्निऋचा' बताते हैं, किन्तु 'निर्झर' के हिन्दीग़ज़ल विशेषांक में उन्हीं की दूसरी ग़ज़ल का चौथा शेर उनकी इस क्रांतिधर्मी व्याख्या को बड़ी आसानी के साथ धराशायी कर देता है। शे'र की बानगी देखिए-

'क्षार का यह सिन्धु पल में क्षीर सागर हो गया,
चितवनों में प्रीति की बैकुण्ठ का बादल तो है।'

श्री शिव ओम अम्बर की उक्त पंक्तियाँ किसी रसिक की रसवार्ता नहीं तो और क्या हैं? वे इन चितवनों के माध्यम से कौन-सी विप्लव-गाथा रचने जा रहे हैं? **कहीं अम्बरजी प्रेमिका को बाँहों में भरने के जोश को आक्रोश तो नहीं समझ बैठे हैं?** अगर ऐसा नहीं है तो क्या वे बताने का कष्ट करेंगे कि **क्या कोई वस्तु या विधा अपने एक ही समय में दो विपरीत चरित्रों में चरित्रवान रह सकी है या रह सकती है? क्या कोई सैनिक प्रेमिका को बाँहों में भरकर विभिन्न रतिक्रियाओं में लिप्त रहते हुए युद्ध लड़ सकता है या युद्ध की बात कर सकता है?** हिन्दी में कथित ग़ज़ल के समथर्कों ने ग़ज़ल की कुछ ऐसी ही दुर्गति बना डाली है कि न तो उसे

Scanned by CamScanner

प्रेमिका ही रहने दिया है और न उसे कोई अग्निऋचा बना पाये हैं।

अगर श्री अम्बर के उक्त कथन को एक पल के लिये हम सही भी मान लें, तब प्रश्न यह है कि अगर ग़ज़ल अग्निऋचा हो गयी है तो वह ग़ज़ल कितनी और कैसे रह गयी है? ऐसे में उसे अपने नये सार्थक नाम की तलाश नहीं करनी चाहिए? ग़ज़ल किसी विशेष तकनीकी या शैली के आधार पर तो संज्ञापित की नहीं गयी। उसे तो कथ्य (प्रेमिका से प्रेमपूर्ण बातचीत) अर्थात् एक प्रणय गीत से रूप में स्थापित किया गया। अब अगर कोई कहता है कि ग़ज़ल एक अग्निऋचा है तो यह तर्क बेहद बचकाना इसलिए है क्योंकि **जब किसी वस्तु या रचना का मूल चरित्र बदल जाता है तो वह अपने नाम की सार्थकता खो देता है।** अगर कोई सैनिक युद्ध में बहादुरी के साथ लड़ता रहे और बाद में विरोधी सेना के पराक्रम को देख भाग छूटे। उसे फिर भी बहादुर कहा जाए, यह हमारे बौद्धिक दिवालियेपन का प्रमाण होगा। ठीक इसी तरह रनवासों के रसानंद में डूबा हुआ, रतिक्रियाओं में लीन कोई रसिक, अपने देश या प्राणियों पर आये संकट का सामना करने के लिये रनवास को त्यागकर सिसकते-बिलखते, चीत्कार करते समाज की ख़ातिर बर्बर और अत्याचारी वर्ग से टक्कर लेने, पीड़ित व्यक्तियों की सेवा में जुट जाये, किन्तु ऐसे व्यक्ति को हम फिर भी रसिक पुकारते रहें, यह भी औचित्य से परे होगा।

ग़ज़ल को हिन्दीग़ज़ल बनाकर उसकी वैचारिक दशा को अगर इसी तरह तय किया जाना है तो ऐसे विद्वानों से एक सवाल और-कि वे **परिवर्तन के नाम पर जैसी ग़ज़ल की वैचारिक दिशा तक कर रहे हैं, इस प्रकार की वैचारिक दिशा या दशा ग़ज़ल को छोड़कर किसी अन्य विधा की हुई है या हो सकती है?** चरित्र या कथ्य विशेष के आधार पर अपनायी गयी विधाएँ जब अपना चरित्र ही खो देंगी तो उनके पास ऐसा क्या शेष रह जायेगा जो उनके नाम को सार्थक या प्रासंगिक बनाये रखे? शिक्षा ग्रहण करने वाला जब शिक्षा प्रदान करने लगे तो वह विद्यार्थी नहीं, शिक्षक हो जाता है। बात ग़ज़ल के संदर्भ में उठायी गयी है अतः यह समझ लेना आवश्यक है कि भजन, कलमा, मर्सिया, क़सीदा आदि की ही तरह ग़ज़ल भी एक चरित्र विशेष के कारण अपने अस्तित्व में आयी। उसका प्राणवान तत्त्व कथ्य रहा, न कि कोई तकनीकी या शैली, जिसमें चाहे जिस कथ्य का विस्तार किया जा सके। नाटक, एकांकी, उपन्यास, कहानी, लघुकथा आदि का सारभूत या प्राणतत्व कथ्य न होकर शिल्प रहा है। इसी कारण इनमें भी हर प्रकार के कथ्य या रस को सँजोया जाता रहा है या सँजोया जा सकता है। लेकिन ग़ज़ल का सम्बन्ध शुरू से ही एक कथ्य विशेष से रहा है, अतः इस कथ्य विशेष में ही ग़ज़ल की सार्थकता अन्तर्निहित है। **भजन की वैचारिक दशा कसीदे में, कलमा का विस्तार मर्सिये में क्या किसी प्रकार सम्भव है?** उत्तर हर प्रकार 'न' में मिलता है। तब ग़ज़ल रसिक की रसवार्ता को छोड़कर प्रलयंकारी मशाल या अग्निऋचा बनकर भी ग़ज़ल कैसे रह जायेगी? इसका तर्कसंगत उत्तर हिन्दी ग़ज़लकारों को कम से कम अब तो देना ही चाहिए।

ग़ज़ल कथित हिन्दी में लिखी जाये या कथित उर्दू में, उसके शरीर और आत्मा का क़त्ल करके उसे ज़िन्दा नहीं रखा जा सकता। ग़ज़ल के बारे में ऐसी तर्कहीन बातों का औचित्य बहरहाल समझ से परे है कि ''ग़ज़ल को हिन्दी-ग़ज़ल कहने का आधार भाषायी शब्दावली न होकर उसकी सांस्कारिक एव विकासमान प्रवृत्तियाँ हैं। हिन्दी ग़ज़ल कहते वक्त हिन्दी से हमारा मतलब हिन्दी भाषा या देव नागरी लिपि से नहीं, अपितु हिन्दुस्तानी तहज़ीब अथवा संस्कृति से है।'' (डॉ० जे० पी० गंगवार, 'निर्झर' हिन्दी ग़ज़ल विशेषांक पृ० ८१)

अब कोई डॉ० जे०पी० गंगवार साहब से पूछे-जब ग़ज़ल का आधार भाषायी है ही नहीं, तो ग़ज़ल को हिन्दीग़ज़ल कहकर एक भाषायी आधार किसलिए खड़ा किया जा रहा है? ग़ज़ल को अगर

Scanned by CamScanner

कोई संस्कार दिया है, उसे विकासोन्मुखी बनाया है तो उसी संस्कार के अनुरूप उसे नया नाम देने की कोशिश भी कीजिए। ऐसा न करना तो बिलकुल वही बात हुई जैसे हम जंगलों को छोड़ आये, शहरों में बस गये, पढ़े-लिखे, लेकिन हमारा मूल्यांकन करने वाला कोई सिरफिरा इतिहासकार हमारे इन संस्कारों की अनदेखी कर हमें अब भी उक्त आधार पर जंगली या आदिवासी इसलिए कहे क्योंकि हमारे पूर्वज जंगली या आदिवासी थे।

अगर हिन्दीग़ज़ल हिन्दुस्तानी तहज़ीब या संस्कृति की द्योतक है? तो क्या भारत में लिखी जाने वाली ग़ज़ल किसी विदेशी संस्कृति की पोषक है? डॉ० जे०पी० गंगवार और इसी तर्ज पर डा. अमिताभ के दिये गये वक्तव्यों से चाहे अनजाने ही सही, पर कहीं न कहीं यह तो ध्वनित होता ही है कि ग़ज़ल अरबी-फारसी शब्दावली और विदेशी प्रतीकों से युक्त एक विधा विशेष का नाम है, जबकि हिन्दी में लिखी जाने वाली ग़ज़ल उक्त शब्दावली और प्रतीकों से मुक्त होने का एक प्रयास। हम डा० अमिताभ और डॉ० गंगवार के उदार और लोकोन्मुखी चिन्तन पर कोई शंका नहीं करना चाहते। फिर भी कुछ सवाल ज़रूर हैं, जिनका निराकरण विश्वास है, ऐसे विद्वान किसी न किसी सार्थक तरीके से ही करेंगे।

प्रश्न यह है कि ग़ज़ल में अरबी-फारसी शब्दावली का प्रयोग कौन कर रहा है? उत्तर चाहे कड़वा ही सही, अधिकांशतः कवि नहीं, शायर। बात खुलासा होने पर और कड़वी न हो जाये और मुझ जैसे नासमझ पर साम्प्रदायिक होने के आरोप न लग जायें, इसलिए इस विवाद की गहराई में न जाते हुए सिर्फ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि तहज़ीब या संस्कृति के संदर्भ में तो सम्प्रदाय, जाति, देश यहाँ तक कि काल के बन्धन भी टूट जाते हैं। संस्कृति सारे भेदों में छेद करती हुई पूरे विश्व को एकाकार कर देती है। अतः ग़ज़ल की अगर कथित हिन्दी में स्थापना करनी ही है तो इसके लिये संस्कृति के सात्विक रूप को अपनाना पड़ेगा। इसके लिये अरबी-फारसी शब्दावली या विदेशी प्रतीकों से पिण्ड छुड़ाने के बजाय उन्हें नयी सारगर्भित सार्थकता प्रदान करनी पड़ेगी। हिन्दी में ग़ज़ल के मूल प्रेरणा-स्त्रोतों तक पहुँचते हुए अगर ग़ज़ल की स्थापना की गई तो यह हिन्दी वालों की एक बड़ी उपलब्धि रहेगी। वर्ना मुझ जैसे नासमझ हिन्दी ग़ज़ल और उर्दू ग़ज़ल के बीच साम्प्रदायिकता की दुर्गंध सूँघने से नहीं चूकेंगे। बात जब बढ़ेगी तो यही नहीं ठहरेगी। कथित हिन्दीग़ज़ल के चर्चित रचनाकार सूर्यभानु गुप्त की उन ग़ज़लों में भी हमें विदेशी प्रतीकों का घालमेल दीखेगा, जिनके अत्यानुप्रास में-'थॉट', 'डॉट', 'इंकपॉट' जैसे शब्दों के प्रयोग किये गये है। क्या इन्हें अंग्रेजी ग़ज़ल कहा जायेगा?

अतः डॉ० परमलाल गुप्त के शब्दों में-''यदि हम उर्दू को हिन्दी की ही एक भाषा-शैली मान लें, तो ग़ज़ल के लिये किसी अलग नामकरण की आवश्यकता नहीं।'' —**रमेशराज**

शीघ्र प्रकाश्य तेवरी संग्रह–

'इक्कीसवीं सदी के तेवरीकार'

हेतु परिचय, छायाचित्र एवं पांच तेवरियां सादर आमंत्रित।

संपर्क-रमेशराज, संपादक-तेवरीपक्ष, १५/१०९, ईसानगर, अलीगढ़

Scanned by CamScanner

तेवरी की स्थापना पर शंका क्यों

'सम्यक-७' (तेवरी अंक) पर जो अन्तर्विरोध थे, अभी भी जिंदा हैं, यानी लेखक बन्धु अभी भी तेवरी को न स्वीकार कर ग़ज़ल को ही हिन्दी में जारी रखना चाहते हैं, जो सार्थक नहीं है। तेवरी की अपनी पहचान है और जारी रहेगी। आक्रोश और व्यवस्था विरोध की ग़ज़लें, ग़ज़लें नहीं अपितु तेवरी ही हैं। आप अपना स्वर जारी रखें। जब हाइकु, लघुकथा, नवगीत, अगीत, अकविता हिन्दी में स्थापित हो सकते हैं तो तेवरी की स्थापना में शंका क्यों? **मदनमोहन उपेंद्र**, सम्पादक-सम्यक, ए.१०, शान्ति नगर, मथुरा

यक़ीनन लोग आपको गौर से पढ़ रहे हैं

तेवरी की पक्षधरता के संबंध में आपके विचार-बिंदु भले ही लेखकगण या समीक्षकवृंद सहजतापूर्वक न पचा पा रहे हों, लेकिन इतना तो तय है कि आपकी तर्कशील-तथ्यपूर्ण विचाराभिव्यक्तियां सभी के चिंतन को कुरेद रही हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण पाठकीय स्तंभ में प्रकाशित पत्रावलि में देखा जा सकता है। यक़ीनन लोग आपको ग़ौर से पढ़ रहे हैं। अपने 'विरोधरस' को ग्रंथ के रूप में भी सामने लाएं। डॉ. राजेश्वरी शांडिल्य को तेवरीपक्ष की भाषा जटिल लगती है, यह पढ़कर उनके भाषा-ज्ञान की सीमा पता चली। चेतन दुवे ने फरमाया कि- 'रस-सिद्धांत में विरोध कोई रस नहीं है।' क्या यह जरूरी है कि जो पहले हो, उसी तक सीमित रहा जाए।

-**जितेंद्र 'जौहर'** आई आर-१३,रेणुसागर, सोनभद्र-२३१२१८

पत्रिका पथ-प्रदर्शक

पत्रिका में कई रंगों से साक्षात्कार। आपका सम्पादन धन्य। ग़ज़ल के बिगड़ते व बदलते परिदृश्य

शेष-पृष्ठ-९ पर.........

विरोध-रस

(शोध)

लेखक-रमेशराज

तेवरी-पक्ष के जन.-मार्च-०८ अंक में 'विरोध-रस' की प्रथम प्रस्तुति में 'विरोध-रस के आलंबन विभाव व उद्दीपन विभाव' पर चर्चा के उपरांत अप्रैल-सित-२००८अंक में 'विरोध-रस के अनुभाव, आलंबन व आश्रयगत संचारी भाव व स्थायी भाव आक्रोश' पर पुनः विवेचन प्रस्तुत हुआ, इस अंक के आगामी १६ पृष्ठों में प्रस्तुत है 'विरोध-रस' की अंतिम कड़ी। आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि पूर्व की भाँति इस बार भी आपकी 'विरोध-रस' पर बहुमूल्य प्रतिक्रिया प्राप्त होगी। -संपादक

Scanned by CamScanner

विरोध-रस की पहचान

विरोध-रस का स्थायी भाव 'आक्रोश' है। जिन कई रसों के आदि आचार्यों ने स्थायी भाव गिनाये हैं, उनमें से कई स्थायी भाव विरोध-रस को परिपक्व अवस्था में पहुँचाने के लिए संचारी भाव की तरह कार्य करते हैं।

भय को लीजिए-भय, भयानक रस की निष्पत्ति कराता है लेकिन जब अत्याचार, शोषण, उत्पीड़न को सहने वाला प्राणी महसूस करता है कि अगर हम यूँ ही डरे-सहमे, दब्बू और कायर बने रहे तो हालात और बद से बदतर होंगे। अतःवह इस भय से बाहर निकलता है और कहता है-

सत्य के प्रति और भी होंगे मुखर / आप कितने भी हमें डर दीजिए।

-दर्शन बेजार, देश खण्डित हो न जाए, पृ.५२

स्थायी भाव शोक करुण-रस में उद्‌बोधित होता है, किन्तु **विरोध-रस के अंतर्गत स्थायी भाव शोक, करुणा के दृष्य संचारी भाव की तरह उपस्थित करते हुए आक्रोश में घनीभूत होता है और स्थायी भाव बन जाता है, जो 'विरोध-रस' के माध्यम से अनुभावित होता है।** ऐसा कैसा होता है, इसे एक तेवरी की तीन तेवरों के माध्यम से देखिए। इसके प्रथम व द्वितीय तेवर में लाज को लूटे जाने की खबर में कारुणिक दृश्य उपस्थित हैं, लेकिन दुर्योधन को दुष्ट बताकर आक्रोश के घनीभूत होने का प्रमाण भी मौजूद है तो तीसरे तेवर में करुणा से उत्पन्न हुआ विरोध सघन है-

फिर किसी अखबार ने छापी खबर, लाज को लूटा गया है रात-भर।
दुष्ट दुर्योधन बिठाने फिर लगा, सभ्यता को अपनी नंगी जाँघ पर।
<u>आबरू कोई न अब बेजार हो, नौजवानो! तुम उठो ललकार कर।</u>

-दर्शन बेजार, एक प्रहारः लगातार, पृ.३४

शोक ग्रस्त व्यक्ति क्रन्दन और प्रलाप भले ही करता है किन्तु यही शोक जब आक्रोश में तब्दील होता है तो क्रान्ति का पैगाम बन जाता है। विरोध की रसात्मक अनुभूति का एक उदाहरण और देखिए-

लिख रहा हूं दर्द की स्याही से जिनको /क्रान्ति की बू आयेगी कल उन खतों में।

-दर्शन बेजार, एक प्रहारः लगातार, पृ.४९

क्रोध और आक्रोश में अन्तर यह है कि क्रोधित मनुष्य शत्रु पक्ष का विनाश करता है जबकि आक्रोशित व्यक्ति उसके विनाश की केवल कामनाएँ करता है। **रौद्रता में रक्तपात होता है, जबकि विरोध, जो कुछ गलत घटित हो रहा है उसे बदलने की एक वैचारिक प्रक्रिया है।**

क्रोध अन्धा होता है जबकि आक्रोश में मनुष्य अपना विवेक नहीं खोता। विरोध हिंसा का न तो पर्याय है, और न कोई हिंसात्मक कार्यवाही। हिंसा के प्रति क्षुब्ध, आक्रोशित आदमी का एक व्यक्तिगत या सामूहिक बयान परिलक्षित होता है। विरोध के रसात्मक आवेग में कवि कहता है-

Scanned by CamScanner

देश की तब क्या नियति रह जायेगी / शेष जब हिंसक प्रवृत्ति रह जायेगी।

-दर्शन बेजार, एक प्रहारः लगातार, पृ.४३

विरोध-रस का परिदर्शन कराने वाली विधा तेवरी के आश्रयों में अहंकारी, साम्राज्यवादी आलंबनों के प्रति विरोध का स्वरूप दृष्टव्य है-

विजय पताका भाई तुम कितनी फहरा दो / वांछित फल पाया है कितने बन्धु समर में।

-राजेश मेहरोत्रा, कबीर जिन्दा है, पृ.१५

सच तो यह है कि क्रोध को विनाश की लीला से बचाने और उसे एक सार्थक दिशा में मोड़ने का नाम विरोध है-

बस्ती-बस्ती नगरी-नगरी गूंज रही यह बोली
अब न खेल पायेगा कोई यहाँ खून की होली।
अब इतिहास रचा जायेगा फुटपाथों की खातिर
खुशियों से भरनी है हमको अब जनता की झोली।

-डॉ. एन.सिंह, कबीर जिन्दा है, पृ. ३९

शोषण-अत्याचार-विहीन समाज की स्थापना हेतु एक रचनात्मक पहल का भी नाम विरोध है जो अपने रसात्मक रूप में इस प्रकार परिलक्षित होती है-

जुल्म की दीवार ढाना चाहता हूँ / इक नया संसार लाना चाहता हूँ।
साँस भी लेना यहाँ मुश्किल हुआ / इस व्यवस्था को हटाना चाहता हूँ।

-कुमार मणि, कबीर जिन्दा है, पृ. ३८

घिनौनी, शोषक, दमनकारी व्यवस्था की पीर जब तीर-सी चुभने लगती है तो दमन से विरोध का जन्म होता है। **विरोध का बोध उस हर अवरोध को खत्म करता है जो क्रान्ति अर्थात् व्यवस्था परिवर्तन में बाधक होता है-**

कौन कर देगा हमें गुमराह तब / रुढ़ियों में हम अगर जकड़े न हों।
हो सके तो अब उन्हें दुत्कारिए / रोशनी का हाथ जो पकड़े न हों।

-दर्शन बेजार, देश खण्डित हो न जाए, पृ. ५५

क्रोध अराजकता का जनक है, जबकि विरोध सृजनात्मकता का पर्याय है-

हाथ इस हद तक हमारा खुल गया / हम लगे सच्चाइयों को मारने।

-दर्शन बेजार, देश खण्डित हो न जाए, पृ.५९

विरोध-रस की विशेषता ही यह है कि **विरोध में सात्विक प्रेम को जिन्दा रखने का जयघोष परिलक्षित होता है-**

बाँटनी चाही अगर धरती हमारी / खाक में मिल जाएगी हस्ती तुम्हारी।
सिर्फ नफरत में जिये जो, वे सुनें अब / प्यार का हमने किया जयघोष जारी।

-दर्शन बेजार, देश खण्डित हो न जाए, पृ. ४४

कल के भारत की तामीर करनी अगर/ कोई दुश्मन बचे ना, यही फर्ज है।

-ब्रह्मदेव शर्मा (अप्रकाशित)

'विरोध-रस', विद्वेष, बैर, घृणा को मिटाये जाने का एक संकल्प है-

Scanned by CamScanner

हम नहीं आदी रहे विद्वेष के / प्रेम को 'बेजार' ने पूरा फकत।

-दर्शन बेजार, देश खण्डित हो न जाए, पृ.३२

विरोध-रस की निष्पत्ति

तिरस्कार, अपमान, शोषण, यातना, उत्कोचन आदि से उत्पन्न असंतोष, संताप, बेचैनी, तनाव, क्षोभ, विषाद, द्वंद्व आदि के वे क्षण जिनमें अत्याचार और अनीति का शिकार मानव मानसिक रूप से व्यग्र और आक्रामक होता है, उसकी इस अवस्था को 'आक्रोश' कहा जाता है।

आक्रोशित व्यक्ति अत्याचार, अनाचार, शोषण, उत्पीड़न, कुनीति, अपमान, तिरस्कार के संताप को एक सीमा तक ही झेलता है, तत्पश्चात वह अपने भीतर एक ऐसा साहस जुटाता है, जिसका नाम 'विरोध' है। जो काव्य में 'विरोध-रस' के नाम से जाना जाता है।

विरोध से घनीभूत व्यक्ति अपनी व्यथा से मुक्ति पाने के तरह-तरह के तरीके अपनाने लगता है। मान लो किसी मोहल्ले के निवासी विद्युत-आपूर्ति के अवरोध से बुरी तरह परेशान हैं। यह परेशानी उन्हें जब 'आक्रोश' से भरेगी तो वे बिजली-विभाग के कर्मचारियों, अधिकारियों को बार-बार कोसेंगे। उन्हें विद्युत-आपूर्ति के अवरोध से अवगत कराने हेतु पत्र लिखेंगे, फोन खटखटाएंगे। इस सबके बावजूद यदि उनकी समस्याओं का हल नहीं होता, तो वे विद्युत सब स्टेशन पर जाकर नारेबाजी के साथ उग्र प्रदर्शन करेंगे। अधिकारियों को खरी-खोटी सुनायेंगे।

मौहल्लेवासियों का यह प्रदर्शन और नारेबाजी तथा अधिकारियों को खरी-खोटी सुनाना ही उनके विद्युत आपूर्ति अवरोध के प्रति 'विरोध' का परिचायक है।

गांधीजी का 'नमक तोड़ो आन्दोलन', 'असहयोग आन्दोलन, सविनय अवज्ञा आन्दोलन' या लाला लाजपत राय का 'साइमन गो बैक', भगतसिंह का विस्फोट के बाद संसद में पर्चे फैंकना आदि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के ऐसे उदाहरण हैं, जिनसे स्पष्ट होता है कि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों ने 'आक्रोशित' होकर अंग्रेजों के अनीति, शोषण, अत्याचार भरे तरीकों का डटकर 'विरोध' किया।

कारखानों में होने वाली हड़तालें, सड़कों को जाम कर देना, थानों पर प्रदर्शन, जिलाधिकारी, एस.एस.पी. के दफ्तर की घेराबंदी या वहाँ भूख-हड़ताल पर बैठना, ग्लोबल वार्मिंग के प्रति नग्न प्रदर्शन आदि व्यवस्था-विरोध के ऐसे विभिन्न तरीके हैं जिनका प्रयोग मनुष्य सदियों से करता आया है।

साहित्य चूंकि समाज का दर्पण होता है अतः जो विरोध हमें सड़कों, कार्यालयों, परिवार आदि में दिखायी देता है, वही काव्य में सृजन का कारण बनता है।

काव्य के रूप में काव्य की नूतन विधा 'तेवरी' तो आक्रोशित आदमी के उस बयान की गाथा है, जिसे 'विरोध-रस' के रूप में जाना जाता है। विरोध-रस का स्थायी भाव आक्रोश है जो आश्रयों में अपनी परिपक्व अवस्था में इस प्रकार पहचाना जा सकता है-

दुःख-दर्दों की तनीं कनातें / अब अधरों पर भय की बातें।
वैद्य दिखें यमराज सरीखे/ प्राण हनें कर मीठी बातें।

Scanned by CamScanner

फिर भी कहता खुद को सूरज/ दिन के बदले लाता रातें।
केसर की क्यारी पर देखीं/ दुर्गन्धों की हमने घातें।
'मिश्र' क्रान्ति आये समाज में / भले लहू की हों बरसातें।

तेवरीपक्ष के जुलाई-सितंबर-०८ में प्रकाशित राजकुमार मिश्र की यह तेवरी दुखदर्दों की तनी कनातों के बीच भय को इसलिए उजागर करती है क्योंकि कवि-मन को प्राणों का हनन करने वाला यमराज के रूप में हर वैद्य दिखायी देता है। सूरज जैसे किरदार अंधेरे को उगलते महसूस होते हैं। केसर की क्यारी में दुर्गंध का आभास मिलता है। कवि को यह सारा वातावरण असह्य वेदना देता है। स्पष्ट है कि दुराचार, दमन और भय से स्थायी भाव 'आक्रोश' जागृत होता है और यह आक्रोश रस परिपाक के रूप में क्रान्ति लाने के लिये प्रेरित करता है। क्रान्ति अर्थात् शोषक, अत्याचारी व्यवस्था का अंत करने का एक सार्थक प्रयास जिसे विरोध के रूप में जाना जा सकता है। इस प्रयास के लिए एक अन्य तेवरीकार **गिरीश गौरव** यह तथ्य दलित, शोषित आश्रयों के समक्ष रखता है-

जो हमें रास्ता दिखाते हैं / मार्ग-दर्शन में लूट जाते हैं।
जब दिये झोंपड़ी में जलते हैं / लोग कुछ आंधियां उठाते हैं।
वो खुशी का शहर नहीं यारो / हादिसे जिसमें मुस्कराते है।

इसी तेवरी में आगे चलकर कवि यह उदाहरण भी सबके समक्ष रखता है-

हम परिन्दों की बात क्या कहिए / क्रान्ति के गीत गुनगुनाते हैं।

-गिरीश गौरव, इतिहास घायल है, पृ.३५

तेवरी-काव्य का आश्रय बना पीड़ित व्यक्ति मानता है-

दुःख-दर्दों को जिये ज़िन्दगी, ऐसा कैसा हो सकता है
सिर्फ जहर ही पिये ज़िन्दगी ऐसा कैसे हो सकता है।
वो तो चाँद भरी रातों में मखमल के गद्दों पर सोयें
फटी रजाई सिये ज़िन्दगी, ऐसा कैसे हो सकता है।

-योगेंद शर्मा, इतिहास घायल है, पृ. ३९

इसीलिये वह व्यवस्था परिवर्तन का उत्तम औजार 'तेवरी' को बताता है-

तिलमिला ज़िन्दगी है, तेवरी की बात कर
त्रासदी ही त्रासदी है, तेवरी की बात कर।
जिन्दगी आतंकमय है आजकल कुछ इस तरह
पीड़ाओं की छावनी है, तेवरी की बात कर।
मौन साधे बैठा है होंठ-होंठ और अब
आँख-आँख द्रौपदी है, तेवरी की बात कर।
नोच-नोच खा रहा है आदमी को आदमी
हर सू दरिन्दगी है, तेवरी का बात कर।

-विजयपाल सिंह, इतिहास घायल है, पृ. २६

विरोध-रस के आलंबन बने शोषक, अत्याचारी, देश-द्रोहियों की करतूतें, आश्रय अर्थात् सत्योन्मुखी संवेदनशीलता से लैस शोषित-पीड़ित किन्तु मेहनतकश व ईमानदार आदमी को इसलिये

Scanned by CamScanner

आक्रोशित करती हैं क्योंकि वह देखता है-

फिर यहां जयचंद पैदा हो गये / मीरजाफर जिन पै शैदा हो गये।

-दर्शन बेजार, एक प्रहार लगातार, पृ.३५

वह अपने चिन्तन से यह निष्कर्ष भी निकालता है-

सूदखोरों ने हमारी ज़िन्दगी / इस जनम क्या, हर जनम गिरवी रखी।

-दर्शन बेजार, एक प्रहार:लगातार, पृ. २६

एक तेवरीकार के लिये आक्रोशित होने का विषय यह भी है-

सड़क पर असहाय पांडव देखते / हरण होता द्रौपदी का चीर है।

-दर्शन बेज़ार, एक प्रहार: लगातार, पृ.२१

एक तेवरीकार के मन में पनपे आक्रोश में अनेक सवाल होते हैं। तरह-तरह के मलाल होते हैं। उसकी पीड़ा और क्षुब्धता का कारण वे दरबारीलाल होते हैं, जो इस घिनौनी व्यवस्था के पोषक हैं। अपसंस्कृति को बढ़ावा देने वाले विदूषकों की जमात की हर बात उसे टीसती है-

पुरस्कार हित बिकी कलम, अब क्या होगा?
भाटों की है जेब गरम, अब क्या होगा?
प्रेमचंद, वंकिम, कबीर के बेटों ने
बेच दिया ईमान-धरम, अब क्या होगा?

-दर्शन बेजार, एक प्रहार:लगातार, पृ.३९

स्थायी भाव आक्रोश जागृत होने के बाद आश्रय में घनीभूत होने वाले 'विरोध-रस' से सिक्त अपमानित, प्रताड़ित, दमित, उत्कोचित और पीड़ित व्यक्ति की रस-दशा कैसी और किस प्रकार की होती है, उसे आश्रय के अनुभावों द्वारा स्पष्ट रूप से पहचाना जा सकता है।

विरोध-रस की पूर्ण परिपक्व रसात्मक अवस्था-

'विरोध-रस' का स्थायी भाव 'आक्रोश' जब अपनी जागृत अवस्था के चरम पर पहुँचता है तो इसके भीतर से संचारी भाव दैन्य, उत्साहहीनता, शोक, भय, जड़ता, संताप आदि तो अपनी-अपनी भूमिका निभाकर शांत हो जाते हैं। सिर्फ जागृत रहता है क्षोभ, विषाद, व्यग्रता से भरा हुआ तीक्ष्ण आक्रोश। यह आक्रोश ही विरोध-रस की पूर्ण परिपक्व रसात्मक अवस्था के दर्शन आश्रयों के अनुभावों के माध्यम से पाठक, श्रोता अर्थात् सामाजिकों को कराता है। आक्रोश की अवस्था में आश्रयों की दशा इस प्रकार की होती है-

(१) व्यंग्यात्मक प्रहार- आक्रोशित आश्रय व्यंग्य के माध्यम से गम्भीर और मर्म पर चोट करने वाली बातें बड़ी ही सहजता से कह जाते हैं। व्यंग्य तीर जैसे घाव देने की तासीर रखता है। तेवरी के

Scanned by CamScanner

आलंबन बने दुराचारी लोगों पर आश्रयों अर्थात् पीड़ितों के व्यंग्यों की बौछार की बानगी प्रस्तुत है-

डाकुओं कौ तुम ही सहारौ थानेदारजी/ नाम खूब है रहयौ तिहारौ थानेदारजी।
धींगरा ते कबहू न पेश त्यारी पड़ि पायी/ बोदे-निर्बल कूँ ही मारौ थानेदारजी।
आप कभी आऔ जो अपने मौहल्ला बीच/ काँपि जाय गली-गलियारौ थानेदारजी।
का मजाल आँख कोई तुमसे मिलाय जाय/ रोज नयी छोकरी निहारौ थानेदारजी।

-योगेंद शर्मा, अभी जुबां कटी नहीं, पृ. २०

वर्णिक छंद में लिखी गयी उक्त तेवरी में व्याप्त आक्रोश का बोध विरोधस्वरूप दरोगाजी के उस व्यक्तित्व पर निरंतर व्यंग्य के माध्यम से प्रहार कर रहा है, जो डकैतों को संरक्षण देने के कारण बदनाम हो चुका है, जो ताकतवर के सामने तो थर-थर काँपता है किन्तु किसी न्याय की आस लिये निर्बल, पीड़ित को थाने में आता देखता है तो उसे न्याय के नाम पर केवल पिटाई और भद्दी गालियों की सौगात देता है। दरोगा की एक खासियत यह भी है कि यह जिस गली-मौहल्ले से होकर गुजरता है तो इसके राक्षसी रूप को देखकर समस्त मौहल्लावासी थर-थर काँपने लगते हैं। इतना ही नहीं इस दरोगा के कारण इलाके की बहिन-बेटियों की इज्जत भी सुरक्षित नहीं है। **ऐसे दरोगा पर आश्रय द्वारा आक्रोश में कसा गया अपरोक्त व्यंग्य सामाजिकों को विरोध-रस के रंग से सराबोर करेगा ही।**

(२) धिक्कारना- आक्रोश से सिक्त आश्रय जब विरोध-रस की पूर्ण परिपक्व अवस्था को प्राप्त करते हैं तो वे चुन-चुनकर गलत आचरण करने वाले आलंबनों को डाँटने-फटकारने और उनके कुकृत्यों के प्रति उनको धिक्कारने लग जाते हैं। यह तथ्य तेवरीकार **सुरेश त्रस्त** की **समाज कल्याण** में प्रकाशित तेवरी के माध्यम से सरलता से समझा जा सकता है-

कभी क्या ज़िन्दगी लेना धरम कोई सिखाता है,
बता फिर भाई को **पगले** निशाना क्यों बनाता है।
किसी की छीनकर राखी, किसी की माँग सूनी कर
अदा से देखिए **पागल** खड़ा वह मुस्कराता है।

(३) ललकारना- आक्रोशित आदमी एक सीमा तक ही अत्याचार, शोषण, उत्पीड़न को मौन या अन्तर्मुखी रहकर सहन करता है, उसके बाद जब उसके आक्रोश का ज्वालामुखी फूटता है तो सख्त पहाड़ों जैसे अत्याचारियों को भी जड़ से उखाड़ फैंकना चाहता है।

आक्रोशित आदमी जब अपनी तेवरयुक्त मुद्रा या भाव-भंगिमा में ललकारता है तो अच्छे-अच्छे कुव्यवस्था के पोषकों के दिल दहल जाते हैं-

हमारे पूर्वजों को अपने ओढ़ा-बिछाया है
कफन तक नोच डाला, लाश को नंगा लिटाया है।
सभी के शीश काटेंगे कि जितने पाप के होंगे
यही सबने, यही हमने यहाँ बीड़ा उठाया है।
जमाखोरो कुशल चाहो अगर तो ध्यान से सुन लो
निकालो अन्न निर्धन का जहाँ तुमने छुपाया है।

-डॉ. देवराज, कबीर जिन्दा है, पृ.२५

Scanned by CamScanner

(४) चेतावनी देना- विरोध-रस की एक महत्वपूर्ण और ध्यान देने योग्य विशेषता यह भी है कि इसका जन्म चूँकि सत्योन्मुखी रागात्मक चेतना के कारण होता है, अतः विरोध के पीछे सार्थक मंतव्य या उद्देश्य छुपे होते हैं। तेवरी में अन्तर्निहित आक्रोश और विरोध का भी अर्थ यही है कि तेवरी उन अराजक, शोषक और बर्बर शक्तियों का मुकाबला करती है जो समाज को अराजक और अशांति के वातावरण में धकेल देना चाहती है। अमर क्रान्तिकारी भगतसिंह के शब्दों में- क्रान्ति बम-पिस्तौल या बल की संस्कृति की पोषक नहीं, किन्तु क्रान्ति में यदि आवश्यक हो तो बल का प्रयोग किया जा सकता है।'' तेवरी के आश्रय इसी कारण आलंबन बने अत्याचारी वर्ग को सर्वप्रथम चेतावनी देते हुए कहते हैं-

जो हिमालय बर्फ से पूरा ढका है / भूल मत ज्वालामुखी उसमें छुपा है।
जिस्म पर आरी न कोई अब चलेगी / पेड़ ने हर पेड़ से अब ये कहा है।
लालटेनें पर्वतों की कह रही हैं / घाटियों में रतजगा है, रतजगा है।

-दर्शन बेजार, एक प्रहारः लगातार, पृ.३३

(५) टकराने की बात करना- तेवरी काव्य के आश्रय जब विरोध से भरते हैं तो मारने-मरने के इरादों के साथ मैदान में उतरते हैं। ऐसे में सबका व्यक्तिगत आत्मालाप सामाजिक समूह का गान बन जाता है, उनके भीतर का आक्रोश एक उम्मीद की रोशनी का प्रतिमान बन जाता है-

जीत निश्चित है तुम्हारी तुम अभी हिम्मत न हारो
काँप सिंहासन उठेगा तुम तपस्या तो सँवारो।
वक्त के भागीरथो! चट्टान की औकात क्या है
राह खुद देगा हिमालय, ठानकर गंगा उतारो।
हो बहुत 'बेजार' अर्जुन न्याय के कुरुक्षेत्र में अब
आ गया है वो समय तुम क्रान्ति की गीता उचारो।

-दर्शन बेजार, देश खण्डित हो न जाए, पृ.२५

(६) प्रतिहिंसा को प्रेरित करना- विरोध-रस के आश्रय न तो स्वभाव से हिंसक होते हैं और न व्यर्थ के किसी रक्तपात में विश्वास रखते हैं। अराजकता, अशांति फैलाना भी उनके उद्देश्य में कभी शामिल नहीं है। शोषणविहीन, स्वस्थ समाज की स्थापना के लिये उन्हें कभी-कभी मक्कार, लुटेरे, उन्मादी, अहंकारी, अत्याचारी वर्ग की हिंसा के विरुद्ध हिंसा को सांकेतिक रूप में उजागर करना पड़ता है। **विरोध-रस के आश्रयों के लिए हिंसा एक ऐसा अन्तिम मानसिक विकल्प होता है जिसमें अंततः हिंसा के विरुद्ध ही अहिंसा का संकल्प होता है।**

आ गया है वक्त अब व्यभिचारियों की खैर हो,
आबरू उनकी लुटेगी उनके घर के सामने।

-अजय अंचल, अभी जुबां कटी नहीं, पृ. २३

हर तरफ है आंधियाँ पर ज्योति जलनी चाहिए
शैतान की शैतानियत बस अब कुचलनी चाहिए।
चैन सारा डस गयीं विषधर हुई यह टोपियाँ

Scanned by CamScanner

विष बुझी कोई छुरी इन पर उछलनी चाहिए।

-अजय अंचल, अभी जुबां कटी नहीं, पृ. २४

शब्द अब होंगे दुधारी दोस्तो! / जुल्म से है जंग जारी दोस्तो!
आदमी के रक्त में मदमस्त जो / टूटनी है वो खुमारी दोस्तो!

-दर्शन बेजार, इतिहास घायल है, पृ.१९

(७) क्रान्ति की बातें करना- विरोध-रस की पूरी की पूरी व्यवस्था या सत्ता का आधार ही त्रासद हालातों में परिवर्तन लाने की माँग पर टिका है। अतः यह कहना असंगत न होगा कि विरोध शोषक, घूर्त्त और मक्कार लोगों द्वारा खड़ी की गयी व्यवस्था को परिवर्तित करना चाहता है।

विरोध-रस से सिक्त तेवरी-काव्य के आश्रय वर्तमान व्यवस्था के विद्रूप को देखकर भिन्नाये, तिममिलाये, बौखलाये हुए हैं। वे केवल क्रान्ति अर्थात् वर्तमान व्यवस्था में परिवर्तन की रट लगाये हुए हैं-

गोबर कहता है संसद को और नहीं बनना दूकान
परचों पर अब नहीं लगेंगे आँख मूँदकर और निशान।

-ऋ.देव शर्मा 'देवराज', कबीर जिन्दा है, पृ.२६

अब खुले नभ के तले रहने का ख्वाब है / तैयार सवालों का तेरे यूँ जवाब है

-सतीश सारंग, कबीर जिन्दा है, पृ.३१

राजनीति देश की खूंख्वार हुई / आज बन्दूक की जरूरत है।

-विक्रम सोनी, कबीर जिन्दा है, पृ.३४

दर्द जब तक अगन नहीं बनता / जिन्दगी का चमन नहीं बनता।

-राजकुमार निजात, कबीर जिन्दा है, पृ. ३५

क्रोध की मुद्रा बनाओ दोस्तो! / जड़ व्यवस्था को हिलाओ दोस्तो!

-सुरेश त्रस्त, अभी जुबां कटी नहीं, पृ.४०

जख्म जहरीले को चीरा चाहिए / काटने को कांच, हीरा चाहिए
अब मसीहा हो तो कोई ऐसा हो / देश को फक्कड़ कबीरा चाहिए।

-दर्शन बेजार, एक प्रहारः लगातार पृ.३२

○

Scanned by CamScanner

'विरोध' के रूप व प्रकार

''लोक में फैली दुःख की छाया को हटाने में ब्रह्म की आनंद-कला जो शक्तिमय रूप धारण करती है, उसकी भीषणता में भी अद्भुत मनोहरता, कटुता में भी अपूर्व मधुरता, प्रचण्डता में भी गहरी आद्रता साथ लगी रहती है--- यदि किसी ओर उन्मुख ज्वलंत रोष है तो उसके और सब ओर करुण दृष्टि फैली दिखायी पड़ती है। यदि किसी ओर ध्वंस और हाहाकार है तो और सब ओर उसका सहगामी रक्षा और कल्याण है।'' आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबंध 'काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था' के उपरोक्त कथन के आधार पर यह तथ्य, सत्य हो जाते हैं कि काव्य को रसनीय मात्र वे भाव ही नहीं बनाते हैं, जो मधुर और कोमल होते है। ध्वंस और अत्याचार के वातावरण में **प्रतिकार** का जो स्वर मुखर होता है, उसकी गति करुणा से उत्पन्न होकर रक्षा और कल्याण की ओर जाती है, जिसके भीतर प्राणी की हर क्रिया, प्रतिक्रिया या अनुक्रिया अधर्म के प्रति असहमति की ऊर्जा बनकर **आक्रोश** का रूप धारण करती है। आहत मन के भीतर जब **'आक्रोश'** स्थायित्व ग्रहण करता है तो इस स्थायी भाव का अनुभावन **'विरोध'** के रूप में सामने आता है।

'विरोध' को एक नये रस के रूप में प्रस्तुत करना माना एक नये अनुभव से गुजरना है। लेकिन यह कार्य अटपटा या अतार्किक इसलिए नहीं है क्योंकि ''केवल परम्परागत स्थायी भाव ही रसत्व को प्राप्त हो सकते हों, ऐसी बात नहीं है, तथाकथित संचारी भी रसत्व को प्राप्त हो सकते हैं। रुद्रट, उद्भट, आनंदवर्धन आदि अनेक आचार्यो ने इस बात को स्वीकार किया था। किन्तु, भोज ने एक और कदम आगे बढ़ाया और कहा कि उनचास भावों के अतिरिक्त भी **जो कुछ रसनीय है या बनने की सामर्थ्य रखता है, उसे रस कहा जा सकता है।** इसी आधार पर उन्होंने रसों की संख्या का विस्तार भी किया।'' (रस-सिद्धांत, डॉ. ऋषि कुमार चतुर्वेदी, पृष्ठ ११९-१२०)

अस्तु! नये रस 'विरोध' का रस-रूप वर्तमान यथार्थोन्मुखी काव्य में अनेक रूप व प्रकारों में दृष्टिगोचर होता है। **'विरोध'** के यह रूप तथा प्रकार निम्न या निम्न से अधिक भी हो सकते हैं-

'विरोध' के रूप

१.अभिधात्मक विरोध–बिना किसी लाग-लपेट के सपाट तरीके से विरोध के स्वरों को भाषा के माध्यम से व्यक्त करना इस श्रेणी के अन्तर्गत आता है। यथा-

Scanned by CamScanner

नाम धर्म का लेकर लाशें 'राजकुमार' न और बिछें,
सद्भावों पर छुरी-गड़ासी और नहीं चलने देंगे।
-राजकुमार मिश्र, तेवरीपक्ष अप्रैल-सिंत.-०८, पृ.१६

२-लक्षणात्मक विरोध-काव्य में किसी समूह, समाज या व्यक्ति के लक्षणों के माध्यम से विरोध के स्वरूप को प्रकट लक्षणात्मक विरोध के अन्तर्गत आता है-

अब ये सर 'बेजार' का उनके मुकाबिल है उठा,
जिनके हाथों में सियासत की खुली शमशीर है।
-दर्शन 'बेजार', तेवरीपक्ष, जन.-मार्च-०८ पृ.२

उपरोक्त पंक्तियों में 'सियासत की शमशीर लिये हुए हाथों के सामने' अत्याचार के शिकार व्यक्ति का 'सर को उठाना' इस लक्षण को प्रकट करता है कि अत्याचारी के अत्याचार को अब सहन नहीं किया जायेगा।

३- व्यंजनात्मक विरोध-किसी बात को जब संकेतों के माध्यम से कहा जाये, या शब्द जब अपने मूल अर्थ को त्याग कर, एक नये अर्थ में ध्वनित हों तो वहाँ व्यंजना शक्ति का प्रयोग माना जाता है। 'विरोध' अपने व्यंजनात्मक रूप में किस प्रकार प्रकट होता है, उदाहरण देखिए-

'सुर्ख फूलों में बारूद बिछाते क्यूँ हो,
घोलना है फजा में तो रंग घोलिये साहिब।
कैलाश पचौरी, तेवरीपक्ष, परिचर्चा अंक-१, पृष्ठ २८

उक्त पंक्तियों में 'सुर्ख फूलों' का मूल अर्थ लुप्त होकर एकता, अमन चैन, भाइचारे का नया अर्थ ध्वनित करता है तथा 'बारूद' शब्द 'घृणा, बैर, द्वेष, हिंसा के अर्थ में ओजस होता है और सम्पूर्ण पहली पंक्ति का नया अर्थ-'देश की अमन-चैन के साथ जीती जनता के बीच आतंकवादी गतिविधियों का विरोध करना' हो जाता है।

४- व्यंग्यात्मक विरोध- कुव्यवस्था, अनीति, अत्याचार का विरोध जब व्यंजना के माध्यम से चोट करते हुए होता है तो इस विरोध का रूप व्यंग्यात्मक होता है। यथा-

राह हजारों खुल जाएँगी,
कोई-सा दल थाम भतीजे।
देश लूटना है मंत्री बन,
फिर करना आराम भतीजे।
-खालिद हुसैन सिद्दीकी, तेवरीपक्ष जन.-मार्च-०८, पृ.९

या

जो भी करे लांछित तुझको,
दोष उसी पर मढ़ जा प्यारे।
-डॉ. संतकुमार टंडन 'रसिक' तेवरीपक्ष अ.-सि.-०८, पृष्ठ २१

Scanned by CamScanner

५-प्रतीकात्मक विरोध- जब उपमेय ही उपमान के सम्पूर्ण लक्षणों को उभारकर उपमान के स्थान पर प्रस्तुत होकर 'विरोध' को ध्वनित करने लगे तो ऐसे विरोध का रूप प्रतीकात्मक होता है-

''दंगे में मारे गये, हिन्दू-मुस्लिम-सिक्ख,
केसरिया बोला सखे- केवल हिन्दू लिक्ख।

-जितेन्द्र जौहर, तेवरीपक्ष, जन.-मार्च-०८, पृ.१०

६-भावनात्मक विरोध- शब्दों के माध्यम से विरोध स्वरूप जब आश्रय की भावनात्मक दशा प्रकट हो-

'जिस्म जिसमें हो न शोलों की इबारत
जुल्म से कर पायेगा वह क्या बगावत।

-दर्शन बेजार, ललित लालिमा, ज०-जू०-०३, पृ०४

७- वैचारिक विरोध- एक निश्चित विचारधारा के तहत योजनाबद्ध तरीके से किया गया विरोध वैचारिक होता है व उसकी रचनात्मकता भी असंदिग्ध होती है-

हम तो हैं बाती दिये की आग से नाता पुराना,
रोशनी बढ़ जायेगी यह सर अगर कट जायेगा।

-डॉ० जे०पी० गंगवार, निर्झर-९३-९४, पृ० ४५

८- चिन्तात्मक विरोध-

डाल-डाल पर जुट गयी अब गिद्धों की भीड़,
कहाँ बसेरा ले बया, कहाँ बनाये नीड़?

-रामानुज त्रिपाठी, तेवरीपक्ष वर्ष-२४, अंक-१, पृ.१४

९-तीव्र विरोध-

'मिश्र' क्रांति आये समाज में,
भले लहू की हों बरसातें।

-राजकुमार मिश्र, तेवरीपक्ष अ.-सि.-०८, पृ.२०

१०- विश्लेषणात्मक विरोध-

देखलो यारो मन्दिर-मस्जिद
बारूदी खान हुये दंगों में।

-योगेन्द्र शर्मा, कबीर ज़िन्दा है, पृ.६७

११- क्षुब्धात्मक विरोध-

हाल मत पूछा जमाने का'खयाल'
सच को सच कहने की रिश्वत दी गयी।

-खयाल खन्ना, तेवरीपक्ष अ.-सि.-०८, पृ.१

Scanned by CamScanner

१२- रचनात्मक विरोध-

उठ रहा है धर्मग्रन्थों से धुँआ
आइये हम फिर गढ़ें अक्षर नये।

-श्रीराम शुक्ला 'राम', तेवरीपक्ष परिचर्चा अंक-१

१३- खण्डनात्मक विरोध-

मानते हैं शक्ति-स्तुति धर्म है,
धूर्त को पर देवता कैसे कहें?

-दर्शन बेजार, तेवरीपक्ष, अप्रैल-जून-८९, पृ०२४

१४-परिवर्तनात्मक विरोध-

होली खूं से खेलौ भइया
बनि क्रांती-इतिहास रचइया
बदलो भारत की तस्वीर, समय आजादी कौ आयौ।

-लोककवि रामचरन गुप्त, तेवरीपक्ष जन-दिस०-९७,पृ०७

१५-उपदेशात्मक विरोध-

नौनिहालों में भरो मत मजहबी नफरत कभी,
एकता के वास्ते लालो-गुहर पैदा करो।

-रसूल अहमद सागर, ललित लालिमा जन-मार्च-०४

१६- रागात्मक विरोध-

मैं समन्दर की भला क्यों पैरवी करने लगा,
एक पोखर से भी पूछो, उसका मैं हमराज हूँ।

-डॉ० शिवशंकर मैथिल, निर्झर-९३-९४, पृ०४७

१७-संशयात्मक विरोध-

अंधकार गर्जन करे, राष्ट्र बहाये नीर,
राजाजी के हाथ में लकड़ी की शमशीर।

-अशोक अजुम, ललित लालिमा जन.जून-०३, पृ.२३

१८-एकात्मक विरोध-कहते हैं कि अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता। लेकिन अकेला चना (मनुष्य) यह भी उम्मीद लगाये रहता है कि आज नहीं तो कल हम एक से अनेक होंगे। कुव्यंवस्था के विरोध में तनी हुई एक मुट्ठी का साथ कल अनेक मुट्ठियाँ देंगी-

आज नहीं तो कल विरोध हर अत्याचारी का होगा,
अब तो मन में बाँधे यह विश्वास खड़ा है 'होरीराम'।

-सुरेश त्रस्त, कबीर जिंदा है, पृ. ५

Scanned by CamScanner

१९-सामूहिक विरोध- एक जैसी यातनाओं, अत्याचारों, त्रासदियों को जब एक समाज या वर्ग झेलता है तो शोषक और बर्बर वर्ग के प्रति उसके विरोध के स्वर भी एक जैसे हो जाते हैं-

आँख अंगारे उगलना चाहती हैं,
भूख अधरों पर मचलना चाहती हैं।
शीशमहलो! बेखबर अब तुम न सोओ,
गिट्टियाँ तुम पर उछलना चाहती हैं।

-जयमुरारी सक्सेना 'अजेय' निर्झर-९३-९४, पृ.४६

○

विरोध के प्रकार

१-स्व-विरोध- कभी-कभी आदमी भूलवश या अन्जाने में ऐसी गलतियाँ कर बैठता है जिनके कारण वह अपने को ही धिक्कारने लगता है-

उसको ही सुकरात बताया, ये क्या मैंने कर डाला?
जिसने सबको जहर पिलाया, ये क्या मैंने कर डाला?
छन्दों, बिम्बों, उपमानों का, जो कविता का हत्यारा,
कविता का घर उसे दिखाया, ये क्या मैंने कर डाला? **रमेशराज (अप्रकाशित)**

२-पर-विरोध- स्व से पर का रिश्ता निस्संदेह आत्मीयता, आस्था और श्रद्धा पर टिका होता है। किन्तु जब रिश्तों के बीच छल पनपता है, स्वार्थ घनीभूत होते हैं तो समान आत्म वाले दो व्यक्तित्व एक दूसरे के प्रति विरोधी स्वरों में बात करने लगते हैं। ऐसी स्थिति में विरोध का स्वर निम्न प्रकार मुखर होने लगता है-

जीत लेंगे आप छल से सत्य को,
आपका अनुमान था, वो दिन गये।
आपकी जादूगरी को देखकर,
'त्रस्त' भी हैरान था, वो दिन गये।

- सुरेश त्रस्त, 'सम्यक' तेवरी विशेषांक-९२,पृ.-१२

Scanned by CamScanner

३-व्यक्ति विशेष-विरोध-जब कोई व्यक्ति विशेष अनाचार, अनीति, भ्रष्टाचार का प्रतीक बन जाता है तो उस व्यक्ति के प्रति व्यक्त किया गया विरोध समूची हैवानियत की धिक्कार की गूँज बन जाती है-

खींचता हर शख्स की अब खाल दातादीन
कर रहा हर जिन्दगी मुहाल दातादीन।

-योगेन्द्र शर्मा, कबीर जिन्दा है, पृ. ७०

४-चारित्रिक विरोध-

आप राणा, बनें, ना बनें,
खुद को जयचंद ना कीजिए।

-जितेंन्द्र जौहर, तेवरीपक्ष अ.-सि.-०८ पृ.१

विश्वामित्र कहाता है पर/ खुद का मित्र न हो पाया है।

-गिरिमोहन गुरू, तेवरीपक्ष अ.-सि.-०८, पृ.२३

५-अहंकार-विरोध-

जमीं से ही जुड़े रहियो ये इन्सानी तकाजा है,
न बेजा अपने सर पर तुम गुमां का आसमां रखियो।

-रसूल अहमद सागर, तेवरीपक्ष अ.-सि.-०८, पृ.१

६-विडंबना-विरोध-

विद्वानों के ग्रंथ पर आमुख लिखें गँवार,
हंस बजायें तालियाँ कौए पहनें हार।

-अशोक अंजुम, ललित लालिमा, जन.-मार्च-०८, पृ.२३

७-साम्प्रदायिकता-विरोध

काम ईश्वर का या अल्ला का नहीं
जिस तरह से ले रहा है जान तू।

-राजकुमार मिश्र, तेवरीपक्ष अ.-सि.-०८, पृ.२०

८-छद्मता-विरोध

चोर-डकैतों ने यहाँ बदला अपना वेश,
पहले रूप सियाह था, आज धवल परिवेश।

-टीकमचन्दर ढोडरिया, तेवरीपक्ष अ.-सि.-०८, पृ.२३

९-आतंकवाद का विरोध

आह्वान हो युग-पुरूषों का, वीर धनुर्धर का,
आतंकवाद या उग्रवाद के सपने हो जायें अतीत।

-हितेश कुमार शर्मा, तेवरीपक्ष अ.-सि.-०८, पृ० २३

Scanned by CamScanner

१०-असह्य परिस्थिति-विरोध-

सोच-सोच के हारा, घबराता जिगर है,
'भारती' क्या कहूँ, शाम-सी सहर है।

-सुभाष नगर भारती, तेवरीपक्ष अ.-सि.-०८, पृ० २२

११-परम्परा-विरोध-

नारी भी कैसे सशक्त हो, दासी बनकर साथ रहे,
नर से अलग न स्वप्न रह सकें, जाये किसके धाम कहाँ।

-डॉ. परमलाल गुप्त, तेवरीपक्ष अ.-सि.-०८, पृ०२२

१२- छल-विरोध-

सबेरे को मजे से शाम लिख तू,
तेरे अनुसार अक्षर हो गये हैं।

-केशव शरण, तेवरीपक्ष जन.-मार्च-०८, पृ०९

१३- विघटन-विरोध-

अब तो आपस में घात रहने दो,
खुशनुमा कायनात रहने दो।

-डॉ० बी.पी. दुवे, तेवरीपक्ष जन-मार्च-०८, पृ०११

१४-समाधानात्मक-विरोध-

हकीकत के अल्फाज गढ़ने पड़ेंगे/ हमें आईने अब बदलने पड़ेंगे,
बहुत लुट चुकी है शराफत की दुनिया/ हमें अपने तेवर बदलने पड़ेंगे।

-आजाद कानपुरी, तेवरी पक्ष, जन-मार्च-०८ पृ०११

१५-व्यवस्था-विरोध-

की थी राम-राज्य की आशा,
हाथ लगी बस घोर निराशा।
यह बेजारी कब जायेगी?
मन में रही यही अभिलाषा।

-दर्शन बेजार, तेवरीपक्ष, वर्ष-६, अंक-३, पृ०१९

Scanned by CamScanner

निष्कर्ष

अव्यवस्था, अनैतिकता, शोषण, अत्याचार, यातना, व्याभिचार के प्रति सघन होने वाले भाव का नाम **आक्रोश** है। **आक्रोश** जब स्थायित्व ग्रहण करता है तो **विरोध -रस** का परिपाक बनता है जो आश्रय के द्वारा अधिकांशतः अपने मानसिक स्तर पर ही आलंबन अर्थात् अत्याचारी वर्ग को धिक्कारने, व्यंग्यात्मक प्रहार करने, ललकारने, टकराने, टकराने की बात करने आदि में अनुभावित होता है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि 'विरोधरस-कुव्यवस्था, कुव्यवस्था के किरदार जैसे सेठ-साहूकार, मंत्री, नेता, नौकरशाह, सरपंच, ग्राम-प्रधान, मेयर, पुलिस, वकील, असामाजिक तत्व जैसे गुण्डे, चोर, ठग, बलात्कारी, छिनरे, तस्कर, अहंकारी, व्यभिचारी, कालाबाजारी करने वाले लोग, धर्म के नाम पर अधर्म फैलाने वाले साम्प्रदायिक तत्व, देश-भक्ति का लबादा ओढ़े देशद्रोही, आतंकी आदि आते हैं।

उद्दीपन विभाव के अंतर्गत- व्यवस्था का विद्रूप जैसे टैक्सों की मार, विद्युत अव्यवस्था, गंदगी, जलभराव, भंग सफाई व्यवस्था, सरकारी लूटखसोट और निकम्मापन, भूकम्प, बाढ़ आदि के प्रति सरकार की बड़े-बड़े पूंजीपतियों को लाभ देने वाली नीतियाँ व आमजन का पूंजीपतियों द्वारा शोषण करना, अदूरदर्शी निरर्थक शिक्षा प्रणाली, गलत व कायराना विदेशनीति, जातीयता, परोक्ष-अपरोक्ष सरकार या विपक्ष का जातीयता, प्रान्तवाद साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देना, अपराधियों या अंगूठा छापों का सत्ता तक पहुंचना, अयोग्य व्यक्तियों को सम्मान-उन्नति या पद देना, प्रतिभा-उपेक्षा से पलायन, अतिक्रमण व यातायात व्यवस्था, **आर्थिक विद्रूष के अंतर्गत**-सूदखोरों का शोषण, कालाबजारी, आर्थिक असमानता, गरीबी, भुखमरी, आर्थिक तंगी के कारण बढ़ती आत्महत्याएँ, **सामाजिक विद्रूप के अंतर्गत**-दहेज, स्वच्छंदता, बलात्कार, बाल-विवाह-प्रथा, सती-प्रथा, अवैध संबंध, बालश्रम, विधवाओं-अवलाओं व बुजुर्गों का तिरस्कार, भोगविलास, अहंकार, सामाजिक नियमों की अवेहलना, **पारिवारिक विद्रूप के अंतर्गत**- मुखिया के महत्व का ह्रास, वैयक्तिकता, जमीन संबंधी विवाद, बच्चों के प्रति माता-पिता की दायित्व हीनता, परिवार के सदस्यों के प्रति अन्य सदस्यों का अपमानजनक रवैया, आपसी मनमुटाव आदि-आदि आते हैं।

आलंबन या उद्दीपन विभाव के द्वारा जो व्यक्ति रस-सिक्त होता है, उसे आश्रय कहा जाता है। इसके अंतर्गत दीन-हीन, गरीब या कमजोर व्यक्ति आते हैं, जिनमें अत्याचारी के प्रति **'आक्रोश'** सघन होता है, जो आश्रयों में **'विरोध-रस'** की निष्पत्ति कराता है।

(समाप्त)

Scanned by CamScanner

('पाठकीय' का शेष.......)

पर यह पत्रिका पथ-प्रदर्शक। बधाई। **डॉ.प्रणव शर्मा** ए-३०, वसुन्धरा, पीलीभीत-२६२००१

बहस अपनेआप में सार्थक

'हिन्दी ग़ज़ल के अन्तर्विरोध' में काम के मुद्दे उठाये हैं। मतान्तर हो सकता है। बहस जारी है। तर्क प्रस्तुत हो रहे हैं, होने दें। **-चन्द्रसेन विराट,** १२१ बेकुन्ठ धाम कॉलोनी, खजराना कोठी, इन्दौर-४५२

दर्शन बेज़ार की तेवरी के क्या कहने?

समूचे अंक में तेवरीवादी पंक्तियां बड़ी धारदार और प्रभावी लगीं। खासकर दर्शन बेजार की तेवरियों के क्या कहने! वाह! **-सुरेंद्र बाजपेयी** हिंदी प्रचारक पब्लि. पिशाचमोचन, वाराणसी

'विरोध-रस' पर किसी को आपत्ति क्यों?

आवरण पृष्ठ पर दर्शन बेजार की तेवरी दिल में उतर गयी। 'विरोध-रस' पर किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए। रस-निष्पत्ति की आचार्यभरत द्वारा दी गयी परिभाषा के आधार पर भी परिस्थिति एवं परिवेश के बदलते संदर्भ में रसों की संख्या में भी वृद्धि होनी चाहिए। इससे साहित्य की सात्यिक परंपरा विकसित होगी। इस संदर्भ में आपके तर्क स्वागत योग्य हैं। **डॉ० हरेराम पाठक,** अध्यक्ष हि.वि. डिगबोई महिला महाविद्यालय, पो. डिगबोई-७८६१७१ (असम) जिला तनसुकिया

नये तेवर दिखाते चले जाइये

नये तेवर दिखाइए-दिखाते चले जाइए। रास्ता अपनेआप तय हो जाएगा।

-डॉ. एस.आर टेलर, अंबिका टेलर्स, लक्ष्मणगढ़, सीकर-३३२३११

तेवरी एक विशेष विधा के रूप में सामने आयी है

दर्शन बेजार मेरे पुराने मित्र ही नहीं, लखनऊ के पहले तेवरीकार हैं। मुखपृष्ठ पर उनकी सुंदर तेवरी पढ़कर आनंदित हुआ। संपादकीय काफी तथ्यपूर्ण। ग़ज़लों के विषय में जो आशंकाएं उभारी हैं, वह वाकई विचारणीय हैं। तेवरी एक विशेष विधा के रूप में सामने आयी है, जिसका धरातल यथार्थवादी है। **-शिवभजन कमलेश** ५५८/२७ग, सुंदननगर, आलमबाग, लखनऊ

संघर्ष और विरोध महत्वपूर्ण

एक नयी विधा को जन्म देकर उसे स्थापित करने के लिए संघर्ष करना और विरोध झेलना महत्वपूर्ण बात है। **-रमेश नाचीज,** ५२४, कर्नलगंज, इलाहाबाद, उप्र.

डॉ. सुधेश का लेख, चुभो गया मन में मेख

तेवरीपक्षमिला, मन-कुसुमाकर खिला। मुखपृष्ठ पर दर्शन बेजार की तेवरी मन भायी, अतिशय सुखदायी। आपका लेख 'हिंदीग़ज़ल के अंतर्विरोध', लेख है काबिले-शोध। लेख- 'हिन्दी में मात्राएं गिराना वर्जित है, बात नहीं नयी नहीं बहुचर्चित है। डॉ.सुधेश का लेख, चुभो गया मन में मेख। राजकुमार मिश्र की पंद्रह तेवरी, अच्छी लगीं सजी-संवरी। काव्य-सरिता की तरंग, मन में जगा गयी उमंग।**-जलालअहमद खां तनवीर,** द्वारा-पोस्ट मास्टर, मांजनपुर, फैजाबाद-२२५४०६

डॉ. मधुर नज्मी स्वयं चुन लें....

संस्कृत भाषा के 'समुद्र' शब्द का ही अपभ्रंश रूप है-'समुन्दर', पर हिंदी-काव्य में 'समुन्दर' की बजाय 'सम्न्दर' वर्तनी

Scanned by CamScanner

का प्रयोग अधिक हुआ है(देखिए-बृहद हिंदी कोश)। यह हुआ एक अर्थ। दूसरा अर्थ जानने से पूर्व 'कवि-समय' शब्द की जानकारी बहुत महत्वपूर्ण है। 'कवि-समय' के अनुसार हिंदी-उर्दू कवियों द्वारा अनेक काल्पनिक मान्यताओं का वर्णन भी किया गया है। इसी आधार पर 'समंदर' शब्द का अर्थ है-एक कल्पित जंतु जो अग्निकुंड में पैदा होता है, वहीं रहता है और अग्नि से बाहर आते ही मर जाता है(देखिए-बृहद हिंदी कोश तथा उर्दू भाषा का फीरोजुल्लुगात)। अब डॉ. नज्मी स्वयं चुन लें कि उन्हें सीप में समंदर पसंद है या सीप में मरा हुआ अग्निकीट। **-महावीरप्रसाद मूकेश**, संगीत विद्यार्थी भवन, सिरसा-१२५०५५

राजकुमार मिश्र की तेवरियां सराहनीय

तेवरी-पक्ष भेजकर जो इज्जत अफजाई की है, शुक्रगुजार हूं। विरोध-रस का मजमून अच्छा। राजकुमार मिश्र की तेवरियां तरक्कीपसंद व सराहनीय। **-मौ. उस्मान ब्यावरी**, जामा मस्जिद के पीछे, मौलाना आजाद गली, ब्यावर, जिला-अजमेर, राज.

तेवरियां अच्छी लगीं

तेवरियां अच्छी। दर्शन बेजार का यह शेर अच्छा लगा-'मेरे मेहमान ही घर आके मुझे लूट गये, मैं उन्हें ढूंढ़ता हूं निगहतर लेकर।' **-डॉ. हितेश कुमार शर्मा**, गणपति काम्पलेक्स, सिविल लाइंस, बिजनौर

विरोध-रस सामयिक हलचलों में सम्मिलित हो

... सारी पत्रिकाएं कमोवेश सिर्फ लकीरें पीट रही हैं। आप तेवरी को एक विधा विशेष की स्थापना के लिए समर्पित भाव से लगे हैं और इस विधा का एक ठोस वैचारिक पक्ष भी प्रस्तुत कर रहे हैं। हम 'व्यंग्य सम्प्रदाय' से जुड़े लोग तेवरी के इसी अनुभाव को 'व्यंगजल' के रूप में उद्धृत करते रहे हैं। 'व्यंग्य-तरंग' के पिछले एक-दो अंक इसी 'व्यंगजल' पर प्रकाशित हो चुके हैं। इस बिन्दु पर प्रथक से आपको लिखूंगा। तेवरी-पक्ष के इस अंक में 'हिंदीग़ज़ल' पर आपका लेख सारगर्भित व अनेक बिंदुओं पर रोशनी डालने का एक सार्थक प्रयास, जो ग़ज़ल के बातूनी दावेदारों के लिए अनुकरणीय है। उर्दूदां ग़ज़ल को हिंदी की ओर नहीं आने देना चाहते, इसे वे अपनी वसीयत समझते हैं और डॉ. मधुर नज्मी जैसे लोग हतोत्साहित करते हैं। इस बिंदु पर डॉ. रामसनेही लाल यायावर द्वारा डॉ. मधुर नज्मी को दिये गये उत्तर सर्वथा यथोचित हैं। 'विरोध-रस' की नयी अवधारणा और उसके विविध शास्त्रीय पक्षों की व्याख्या एक उत्साहवर्द्धक प्रयास है। आपके इस प्रयास को हिंदी-जगत की सामयिक हलचलों में सम्मिलित किया जाना चाहिए।

-कृष्णकांत 'एकलव्य', सं.-व्यंग्य-तरंग, २०९, प्रेम निकुंज, रुहट्टा, जौनपुर-२२२००२

विरोध-रस शोधपरक है

दर्शन बेजार की तेवरी अच्छी। संपादकीय विचारोत्तेजक। 'विरोध-रस' शोधपरक। निस्संदेह साहित्य की श्री-समृद्धि में यह सहायक सिद्ध होगा। आज जब मौलिक साहित्य का अभाव है, आप जैसे लोग परिश्रम से मौलिक शोध-संकल्पना में लगे हैं।**-डॉ.ज्ञानवती दीक्षित**, १६९, प्रतिभा निवास, रोटी गोदाम, सीतापुर-२६१००१

मैं तेवरी के तेवर का प्रबल पक्षधर हूं

मूलतः आप ग़ज़ल के जिस रूप को तेवरी कहते हैं, मैं उसी तेवर का प्रबल पक्षधर हूं। ग़ज़ल के नाम पर जो आपाधापी, उठापटक चल रही है, मैं उससे विरत तेवरी व 'विरोध-रस' का समर्थन करता हूं।**-अजय प्रसून**, ४/७५, सिविल लाइंस, टेलीफोन केंद्र के पीछे, बुलंदशहर-२०३००१

Scanned by CamScanner

आपकी खोज निश्चित प्रशंसनीय

'विरोध-रस' की बावत बहुत कुछ जानकारी विस्तार से उपलब्ध। तेवरी विधा की रचनाओं से मन प्रफुल्लित करती हैं। सारगर्भित तेवरियों को पढ़ने में मन पर तनिक भी दबाव नहीं पड़ता। तेवरी के पक्ष में इतनी प्रतिक्रियाएं प्राप्त होना इस बात का द्योतक है कि पत्रिका को कितनी लोकप्रियता हासिल हो रही है।-**रामसहाय वर्मा,** सं.-मकरंद, बी-१४, सेक्टर-१५, नोएडा-२०१३०१

मन गदगद, आत्मा तृप्त

संपादन में गजब की शक्ति। मन गदगद, आत्मा तृप्त। मां शारदे का सदा कलम पर निवास बना रहे। -**जयसिंह अलवरी,** सं.-साहित्य सरोवर, दिल्ली स्वीट, सिरुगुप्पा-५८३१२१, जिला-बल्लारी, कर्नाटक

तेवर सराहनीय

तेवरीपक्ष पत्रिका का तेवर वस्तुतः सराहनीय। 'हिंदीगजल के अंतर्विरोध' लेख सार्थक। राजकुमार मिश्र की तेवरियां प्रभावपूर्ण। -**डॉ. उमाशंकर शुक्ल'उमेश',** फूलपुर, इलाहाबाद-२१२४०२

राजकुमार मिश्र की तेवरियां स्वागत योग्य

राजकुमार मिश्र की १५ तेवरियां स्वागतयोग्य, जिनमें कुंठा, संत्रास, विसंगति, व राजनीतिक पतन पर तेवर दिखलाए गये हैं। अन्य तेवरियां भी समय का दर्द प्रस्तुत करने में सफल।

-**सुभाषनागर भारती,** नागर मेडिकल स्टोर, गांधी चौक, तहसील के पास, पो.-अकलेरा (राज.)

'विरोध' का स्वर शास्त्रीय दृष्टि से 'रस'

'विरोध-रस' की चर्चा सार्थक लगी। मैं भी मानता हूं कि समकालीन कविता में जो विरोध का स्वर है, वह शास्त्रीय दृष्टि से भी तो रस ही है। अब उसे नाम क्या दिया जाये, यह विचारणीय है-'विरोध-रस' या कुछ और....। वस्तुतः विरोध तो स्थायी भाव है। विद्रोह-रस कहना अधिक उचित लगता है। -**डॉ. नटवर नागर,** ५३९,बिहारीपुरा, गली सेठ भीकचंद, मथुरा

रस के प्रति भावों की व्याख्या सीमित नहीं

'विरोध-रस' के अनुभाव, विभाव, संचारी भाव के शोधपरक लेख पठनीय। रस के प्रति भावों की व्याख्या करना सीमित नहीं। राजकुमार मिश्र की तेवरियां मार्मिक व भावपूर्ण। पत्रिका हर कर, हर घर और जन-जन की गलहार बने, यही कामना। -**डॉ. शारदा प्रसाद 'सुमन',** १८६/२७३, कमलानगर (खेरा), टापा रोड, फिरोजाबाद-२८३२०३

नवोदितों को पत्रिका ज्ञानवर्द्धक

संपादकीय में रचनाकारों को छंदों के विषय में अच्छी जानकारी। रचनाकार बिना व्याकरण का ध्यान रखे जो मन में आता है, लिख देते हैं। इस संदर्भ में यह पत्रिका काफी सहायक सिद्ध होगी।-**डॉ. आई.ए. मंसूरी,** सं.-भाग्य दर्पण, भानपुरी-खजुरिया, जिला-लखीमपुर (खीरी)-२६२९०४

'विरोध-रस' पर उत्तम सामग्री

आपने 'विरोध-रस' पर उत्तम सामग्री देकर इसे न केवल पठनीय वरन् संग्रहणीय भी बना दिया है। -**डॉ. गणेशदत्त सारस्वत,**सं.-मानसचंदन, सारस्वत सदन, सिविल लाइंस, सीतापुर-२६१००१

आपके कार्य शोधपरक होते हैं

'विरोध-रस' खूब रहा-आपके कार्य शोधपरक होते हैं-नयी-नयी चीज ढूंढ़कर लाते हैं आप। अनंत

Scanned by CamScanner

बधाई। जीवंत तेवरों के लिये विशेषतः। **–अशोक अंजुम,** ६१५, ट्रकगेट, कासिमपुर(पा.हा.), अलीगढ़

अंक प्रशंसनीय

अंक की नवीनता, मौलिकता प्रशंसनीय है। **–डॉ. प्रभा ब्यौहार,** ब्लाक-६, खंडेलवाल कांपलैक्स, छोटी लाइन फाटक के पास, नागपुर-म.प्र.-४८२००२

रचनाएं उत्कृष्ट

सभी रचनाएं उत्कृष्ट।**–डॉ. पूरन सिंह,** २४०, वैस्ट पटेल नगर, नयी दिल्ली-८

हिंदीग़ज़ल का स्वभाव तेवरी ही है

आंदोलन को धीमा न पड़ने न दें। हिंदीग़ज़ल का स्वभाव तेवरी ही है।

–रमेशचंद शर्मा 'चद, डी-४, उदय हाउसिंग कॉलोनी सोसा., वैजलपुर, अहमदाबाद-३८००५१

विरोध-रस प्रामाणिक

'विरोध-रस' प्रामाणिक व शोधपूर्ण।**–इं. त्रिलोक सिंह ठकुरेला,** ४०८जी, रेलवे कालोनी,आबूरोड,राज.

गागर में सागर

तेवरीपक्ष गागर में सागर**–डॉ. विश्वनाथ सिंह,** पटेलनगर, हिलसा, नालंदा

ग़ज़ल को थोक-भाव से लिखने वालों पर करारा प्रहार

'मंच' स्तंभ के अंतर्गत 'हिंदी ग़ज़ल' पर आपका आलेख तुलसी प्रभा-सित.-२००० समीक्षा आजकल के तथाकथित ग़ज़लालोचकों एवं ग़ज़ल को थोक-भाव से लिखने वालों (कहने वाले नहीं) पर करारा प्रहार है। आपका गद्यात्मक तेवर, पद्यात्मक तेवर के समान ही मारक, मोहक एवं सोचक है।**–छंदराज,** बेकापुर, मुंगेर-८११२०१ (बिहार).

और ये भी...

ग़ज़ल काव्य की एक विधा

ग़ज़ल काव्य की एक विधा है...जो भी काव्य के विषय हैं, वे सब ही ग़ज़ल के विषय हैं।

.. **विजय उपाध्याय मेरठी,** क्यू.बी.-५४/२, हस्तिनापुर मेरठ-२५०४०४

तेवरी कवि, मन-बहलाव के मदारी

आपने साहित्य के ग्यारहवें रस 'विरोध-रस' की उद्‌भावना कर पाठकों को चमत्कृत कर दिया है, प्रतिक्रियाएं पढ़कर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है। तेवरी या ग़ज़ल बहुत हल्के-फुल्के क्षणों में पढ़ने-लिखने की विधाएं हैं। इनमें स्वयं का कोई रस-परिपाक नहीं है। ये कविताएं कवि के क्षणिक उद्वेग, आक्रोश, या प्रतिरोध की ग्रंथियां हैं। इनमें काव्य-रस भी कहीं-कहीं मिल जाता है। तेवरी-कवि, मन-बहलाव के मदारी प्रतीत होते हैं। **डॉ.राजेश्वरी शांडिल्य,** लखनऊ

प्रस्तुति प्रभावशाली नहीं

प्रस्तुति प्रभावशाली नहीं। ध्यान देने की आवश्यकता। तेवरी-संग्रहों को पढ़ने तथा उन पर विस्तार से लिखने का मन है। **–डॉ. श्याम निर्मम,** ई-२८, लाजपतनगर, साहिबाबाद (गाजियाबाद)-२०१००५

नाम तो तेवरी का बहुत सुन रखा था

मैं तो इतना जानता हूं कि सबसे पहले ग़ज़ल थी, फिर हिंदीग़ज़ल, तेवरी और न जाने क्या हो गयी। आपके शहर के नीरजजी भी अलग नाम से पुकारते हैं। नामों का क्या है, कोई किसी नाम से पुकारना शुरू कर दे...। **–डॉ. मोहदत्त साथी,** ए-७८, आवास विकास कॉलोनी, बदायूं-२४३६०१

Scanned by CamScanner

तेवरियां

रमेश प्रसून

अंधे युग के अंधे-अंधे अंधियारों से बूझे कौन?
इनसे क्या संबंध तुम्हारा, उजियारों से बूझे कौन?
नींद नहीं आती हैं जिनको, उसका तो कुछ कारण है,
तुम क्यों जागे हो रातों में, इन तारों से बूझे कौन?
फूलों का शूलों के घर में आना-जाना देखा है,
लूट गया है कौन बहारें, पतझारों से बूझे कौन?
लड़ने को लड़ आयी थी जो बड़े-बड़े तूफानों से,
नावों किनारे पर डूबी क्यों, पतवारों से बूझे कौन?
था न इरादा जो यदि इनका जलने और जलाने का,
कैसे फैली आग यहां पर, अंगारों से बूझे कौन?
हत्यारों ने हत्या की है फिर धरती के बेटों की,
इसमें हाथ तुम्हारा कितना, हथियारों से बूझे कौन?
चीख रहा है देश आज मेरे भीतर जाने कब से,
किस-किस ने चोटें पहुंचायी घर-द्वारों से बूझे कौन?
-४/७५, सिविललाइंस, टेलीफूनकेंद्र के पीछे, बुलंदशहर

मो. उस्मान ब्यावरी

बात खरी कहता हूं बाबा
हक़ पर ही मरता हूं बाबा।
ग़म से कब डरता हूं बाबा,
हर लमहा हँसता हूं बाबा।
घुप्प अंधेरे में देखो तो,
रोशन-सा दिखता हूं बाबा।
सब ही आनंदित हो जाएं
वही अमल करता हूं बाबा।
अपना हो या गैर हो 'उस्मां'
सबसे ही मिलता हूं बाबा।
-जामामस्जिद के पीछे, मौलानावाली गली, ब्यावर,
जिला-अजमेर, राज.

डॉ. उमाशंकर शुक्ल उमेश

जिंदगी बाजार बनकर रह गयी,
झूठ का व्यापार बनकर रह गयी।
बेईमानी, लूट, हिंसा, अपहरण,
ज़िंदगी व्यभिचार बनकर रह गयी।
छा रहा आतंक अब चारों तरफ,
ज़िंदगी खूख्वार बनकर रह गयी।
स्वार्थ का कैसा अजब दस्तूर है,
ज़िंदगी दीवार बनकर रह गयी।
बढ़ रही कटुता चतुर्दिक दिन-ब-दिन,
ज़िंदगी तकरार बनकर रह गयी।
अब बहारें भी नज़र आती नहीं,
ज़िंदगी पतझार बनकर रह गयी।
आदमी विश्वास हो बैठा 'उमेश'
ज़िंदगी अखबार बनकर रह गयी।
-फूलपुर, इलाहाबाद-२१२४०२

जयसिंह अलवरी

सिक्का जोर-जुल्म का चल रहा है,
क़ानून खड़ा हाथ मल रहा है।
किससे शिकवे-शिकायत करें,
न्याय के घर अन्याय पल रहा है।
चंद शातिरों की साजिश से आज,
धर्म निशाना बना, अधर्म फल रहा है।
खींची है जब से दीवार नफरत की,
सूरज सुख का शनै-शनै ढल रहा है।
-दिल्लीस्वीट्स, सिरुगुप्पा-५८३१२१जिला-बल्लारी, कर्ना.

डॉ. नटवर नागर

चिर प्रतीक्षित उजाला हुआ तो नहीं,
कम नगर का अंधेरा हुआ तो नहीं।
रात बीती मगर रोशनी है किधर?
सूर्य नभ में हमारा हुआ तो नहीं।
पूर्णिमा की निशा भी अंधेरी रही,
चांदनी का ठिकाना हुआ तो नहीं।
रौशनी की सदा मैंने की अर्चना,
मैं अंधेरों का प्यादा हुआ तो नहीं।
गीत गाये तुम्हारे कोई किसलिए?
कवि तुम्हारा खरीदा हुआ तो नहीं।
-५३९, बिहारीपुरा, गली-भीकचंद, मथुरा (उप्र.)

सुभाषनागर भारती

छीनें मुंह के निवाले लोग,
कितने दिल के काले लोग।
मुफलिसी में भी जीते रहे हैं,
हे राम! तेरे हैं हवाले लोग।
किस्मत कब पलटा खा जाए,
कैसे अपने को हैं संभाले लोग।
अंधेरे में ढूंढ़ रहे हैं ये रोशनी,
किस सांचे में हैं ढाले लोग?

Scanned by CamScanner

तू भले दर्द दे और इम्तहान ले
'भारती' हैं बहुत भोले-भाले लोग।
-सचिव-साहि.सुधार परिषद,अकलेरा-राज.-३२६०३३

खयाल खन्ना

बिलखते-चीखते लम्हात का रुख मोड़ देती है,
हमारी शायरी टूटे दिलों को जोड़ देती है।
बहुत कुछ दिल में है सुनने-सुनाने के लिए,
पर तुम्हारी बेनियाजी हौसला ही तोड़ देती है।
हमें गुमनाम होने ही नहीं देती कभी दुनिया,
हमारे नाम से कोई कहानी जोड़ देती है।
बहुत मजबूत है रस्मे-जहां, रस्मे-मुहब्बत से,
हमें भी तोड़ देती है, तुम्हें भी तोड़ देती है।
'खयाल' आसां नहीं है काम हक़ की पैरवी करना,
यही वो राह जिसमें साथ दुनिया छोड़ देती है।
-१०९०, जनकपुरी, बरेली-२४३१२२

डॉ. मोहदत्त साथी

ऐसा ये किसी शहर में मंज़र न मिलेगा,
दीवारो-दर मिलेंगे मगर घर न मिलेगा।
ये जश्न, भीड़भाड़ ये, बातें बड़ी-बड़ी,
जो आप कर रहे हैं हमें कर न मिलेगा।
माना कि भूख-प्यास के आदी हैं आप भी,
मेरी तरह से जीत के यहां मर न मिलेगा।
जो बहरे-इन्तजाम हैं कुर्सी पै आजकल,
क्या कोई और इनसे बेहतर न मिलेगा।
कब तक हम इन्क़लाब की खातिर घिसें कलम
कविता के हाथ में कभी खंजर न मिलेगा।
बैठे हैं क़ैद किये जिसको ज़हन में,
'साथी' के उस ख़्याल का पैकर न मिलेगा।
-ए-७८, आ.वि. कॉलोनी, बदायूं-२४३६०१

डॉ.गणेशदत्त सारस्वत

संबंधों का आज हो रहा खून है,
सर पर जाने कैसा चढ़ा जुनून है।
हर ओर अराजकता ही करती राज्य है,
खुदगर्जी की भेंट हुआ कानून है।
प्यार वासना का हो रहा शिकार है,
बंद आयतों में सड़ता मजमून है।
शांति-कपोती के खतरों में प्राण हैं,
तोप घृणा की रही विश्व को मून है।
तीखी चुभन, घुटन की नींव कंपा रही,
नहीं मिल रहा खोजे कहीं सुकून है।
-सारस्वत सदन, सिविल लाइंस, सीतापुर-२६१००१

ओम रायजादा

चल रही सत्ता की अब दूकान, बोलो क्या करोगे,
कर रहे फनकार सब गुणगान, बोलो क्या करोगे।
आज धोखे में यहां हंसों ने फिर से कर दिया,
किसी कौवे का बड़ा सम्मान, बोलो क्या करोगे।
मंत्री के, विधायक के द्वार पर पी.एच.डी. भी,
आजकल विद्वान सब दरबान, बोलो क्या करोगे।
देश की उन्नति हुई है इस तरह कुछ इस तरह,
हर गली लगने लगी शमसान, बोलो क्या करोगे।
देश के सब लोग अंधे, गूंगे, बहरे तो नहीं,
आप हैं कुछ रोज के मेहमान, बोलो क्या करोगे।
-५३९, बिहारीपुरा, गली-भीकचंद, मथुरा (उप्र.)

डॉ. शारदा प्रसाद 'सुमन'

ऐसे भी यहां लाखों पर्व आये दोस्तो,
फूलों की दोस्ती में जखम खाये दोस्तो!
औरों के दोष बार-बार देखते रहे,
अपने तो दोष पर नजर न आये दोस्तो!
गांधी का राम-राज्य यहां आये किसतरह,
रावण के सब उसूल हैं अपनाये दोस्तो!
विज्ञापनों में देशभक्ति बिक रही यहां,
कितने वतन पै हमने सितम ढाये दोस्तो!
अपने वतन में सत्य की देखी है दुर्दशा,
अपने ही आप हम बहुत शरमाये दोस्तो!
कुर्बानियां दी थीं जिन्होंने देश के लिये,
कितने शहीद याद 'सुमन' आये दोस्तो!
-१८६/२७३,कमलानगर(खेरा),टापारोड,फिरोजाबाद

पं. मुकेश चतुर्वेदी 'समीर'

ज्यों की त्यों चादर रखिए
पैमाने खुम-सागर रखिए।
घायल हो ना जिनसे कोई,
लब पै ऐसे पत्थर रखिए।
सर पै कफन बांध ले जो भी,
नाम उसी का कायर रखिए।
ठहरे मुल्जिम ही जब मुंसिफ,
कैसे प्रकरण दायर रखिए।
-छोटीदेवी,बाईसा मोहाल,नरनारायण वार्ड, सागर

Scanned by CamScanner

दो कविताएं

डॉ. रीता हजेला 'आराधना'

1. हवस

भावनाशून्य हवस भी होती है कोई चीज
नारी-मन कभीनहीं कर पाता स्वीकार,
इसीलिए वो ठगी जाती है बार-बार।
जो नहीं जानते न्यौछावर होना है-
किस चिड़िया का नाम,
वो तो सिर्फ गिनना जानते हैं
उड़ती चिड़िया के पंख
और उन्हें कतरना जानते हैं।

-687, हूडा फेस-2,
सेक्टर-12,पानीपत-132103

डॉ. अभिनेष शर्मा

1. कश्ती की तकदीर

कश्ती जीवन की जब
छूटी भवसागर में,
उम्मीद थी कोई तो सहारा
पहुंचायेगा साहिल तक
उम्मीदें कभी पूरी नहीं होती।
हर कश्ती की तकदीर में साहिल नहीं।
कुछ कश्तियाँ बेसहारा इधर-उधर
बेवजह तैरकर/ आपस में टकराकर
हो जाती हैं चूर-चूर।
बेसहारा खौफजदा कश्तियां
कहां कर पाती हैं लहरों से युद्ध !!
अन्त वही है- आत्म समर्पण।

-हरिनगर, अलीगढ़।

लघुकथा-(फ्लाप शो)

-डॉ पूरनसिंह

जानू बहुत अच्छा सिंगर था। रूना भी बेहतरीन गायिका। लोग उनके स्टेज शों देखने के लिए उतावले रहते। एक स्टेज शो में जानू और रूना ने साथ-साथ प्रोग्राम दिया, जिसकी पूरे देश में प्रशंसा हुई। फिर तो उन दोनों ने मुड़कर नहीं देखा। वे दोनों जहां भी प्रोग्राम देते, लोग उनके शो देखने के लिए उमड़ पड़ते। देश-विदेश में उनकी गायकी का परचम लहराने लगा। जानू और रूना में न जाने कब प्यार हो गया, पता ही नहीं चला। प्यार का यह सिलसिला चला तो फिर उन दोनों की शादी से ही खत्म हुआ। शादी के पश्चात् उन दोनों ने सिर्फ दो ही शो किये। पहला शो बहुत अच्छा रहा। दोनों की बहुत प्रशंसा हुई। लेकिन दूसरे शो में केवल रूना की ही प्रशंसा हुई। जानू के अंदर ही अंदर कुछ पिघलने लगा, जिसे रूना ने भांप लिया और एक दिन प्यार से पूछा-''जानू तुम चुप क्यों रहने लगे हो? जानू ने कहा था-''नहीं रूनू, ऐसा तो कुछ नहीं है।'' ''तुम मुझसे कुछ छुपा रहे हो।'' ''कुछ भी तो नहीं है।'' पुरुष ने दर्द सीने में दबाने की कोशिश की तो स्त्री की जिद साक्षात उमड़ी- ''क्या तुम मुझसे प्यार नहीं करते जानू?'' ''एक चीज मांगना चाहता हूं तुमसे रूना।'' पीड़ा घनी हुई तो लावा बनकर फूटने को बिलबिलाने लगी थी। ''सिर से पांव तक तुम्हारी ही तो हूं जानू, फिर मांगना कैसा?'' प्यार में बलिदान कोई नयी बात नहीं थी। ''तुम स्टेज शो करना छोड़ दो, घर-परिवार देखो।'' रूना की गोद में सिर रखके जब जानू ने अपना जहर उस पर छोड़ा तो रूना सिर से पांव तक नीली हो गयी थी और जानू में अपना प्यार खोज रही थी कि अनायास ओंठ बजने लगे थे-''क्या जानू! तुम मेरी जान हो? स्टेज शो तो क्या, तुम्हारे कहने पर तो मैं दुनिया ही छोड़ दूं। वादा रहा आज के बाद मैं कोई स्टेज शो नहीं करूंगी।''

-२४०,बाबाफरीदपुरी, वैस्ट पटेलनगर, नयी दिल्ली

रचनाकारों से निवेदन

'तेवरी-पक्ष' एक स्वस्थ सत्योन्मखी चिन्तन की ओजस् अभिव्यक्ति है। रचनाएँ प्रेषित करने से पूर्व रचनाकार, रचना की श्रेष्ठता को स्वयं परखें, तत्पश्चात् ही रचनाएँ भेंजें। एक साथ ढेर सारी रचनाएँ न प्रेषित करें। विविध विषयों पर निबन्ध, आलेख, व्यंग्य आदि का स्वागत है। रचनाएँ कागज के एक ओर उचित हाशिया छोड़कर, सुस्पष्ट तरीके से अंकित या टंकित होनी चाहिए। कृपया कार्बन कापी न भेजें। हर रचना के अन्त में रचना के मौलिक, स्वरचित, अप्रकाशित होने को प्रमाणित किया जाना आवश्यक है। कृपया लम्बी रचनाएँ न भेंजें। 'प्रेमिका से प्रेमपूर्ण बातचीत' के सन्दर्भों को मुखरित करती ग़ज़लों को ही हम ग़ज़ल मानते हैं। कथित ग़ज़ल की तकनीकीय व्यवस्था में आबद्ध, विसंगति, व्यवस्था विरोध की कथित ग़ज़लों को हम 'तेवरी' शीर्षक देकर एक सही मूल्य का, सही मूल्यांकन का प्रयास करते हैं। ग़ज़ल के काफिये या तेवरी के अन्त्यानुप्रास के प्रयोग में सावधानी अवश्य बरतें। तुर्कों के दुहराव या बे-मेल स्वर के आधार को किसी भी प्रकार शुद्ध नहीं ठहराया जा सकता। हमारी बातों से असमति पर, आपके सुझाव भी सादर आमंत्रित हैं। समीक्षार्थ पुस्तक की दो प्रतियाँ भेजना आवश्यक है। पुस्तक की समीक्षा न स्वयं भेंजें न किसी से भिजवाएँ।

Scanned by CamScanner

भारत सरकार पंजीकरण संख्या–51714/87

शोधार्थियों के लिये एक महत्वपूर्ण पुस्तक

विचार और रस

(रस-निष्पत्ति का वैचारिक विवेचन)

लेखक–रमेशराज

राष्ट्रीय बाल कविताएँ

कवि–रमेशराज

प्राप्ति स्थल- बजरंग प्रकाशन, सागरपुर, दिल्ली

महत्वपूर्ण तेवरी संग्रह

(१) अभी ज़ुबाँ कटी नहीं	संपादक-रमेशराज
(२) कबीर ज़िन्दा है	संपादक- रमेशराज
(३) इतिहास घायल है	संपादक-रमेशराज
(४) एक प्रहारः लगातार	तेवरीकार- दर्शन बेजार
(५) देश खण्डित हो न जाए	तेवरीकार- दर्शन बेजार

सार्थक-सृजन, १५-१०९, ईसानगर, निकट-थाना सासनीगेट, अलीगढ़

ये जंजीरें कब टूटेंगी

शीघ्र प्रकाश्य तेवरी-संग्रह (तेवरीकार-दर्शन बेजार)

सार्थक-सृजन, १५-१०९, ईसानगर, निकट-थाना सासनीगेट, अलीगढ़

डाक पंजीकरण संख्या–ए.एल.जी./67/08/2010

प्रतिष्ठार्थ–

संपादक/प्रकाशक/ मुद्रक रमेशराज द्वारा सार्थक सृजन प्रकाशन कार्यालय १५/१०९, ईसानगर, निकट-थाना सासनीगेट अलीगढ़ के लिये शारदा प्रिंटिंग प्रैस हेतु आशू प्रिंटिग प्रैस, अचल तालाब, अलीगढ़ से मुद्रित।